मुस्लिम मानस का अध्ययन

हस्सान हतहूत

प्रस्तावना

अहमद ज़की यमनी

मुस्लिम मानस का अध्ययन

कवर– कवर पेज का इलस्ट्रेशन व डिजाइन स्वयं लेखक द्वारा।
इलेक्ट्रोएंकोफैलोग्राफिक ट्रेसिंग। पुस्तक के शीर्षक का प्रतीकात्मक प्रस्तुतिकरण।

मुस्लिम मानस का अध्ययन

हस्सान हतहूत

प्रस्तावना - अहमद ज़की यमनी

अमेरिकन ट्रस्ट पब्लिकेशंस

अमेरिकन ट्रस्ट पब्लिकेशंस, यूएसए

युनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका में मुद्रित

आवृत्तिः १९९६, १९९७, १९९८, २००१, २००२, २००३, २००५ और २००८

लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस की सूची में शामिल

लेखक – हतहूत, हस्सान

'रीडिंग द मुस्लिम माइंड', हस्सान हतहूत। अहमद ज़की यमनी की प्रस्तावना।

संदर्भ ग्रंथों के साथ

ISBN 0-89259- 156 - 0 – ISBN 0 - 89259 - 157 - 9 (pbk)

1. इस्लाम 1 टाइटल

BP 161.2.H84 1994

297 - dc20 94 . 46150 CIP

उनके लिए जो प्रेम, सत्य और
मानवता के प्रति प्रतिबद्ध हैं।

आभार

इस पुस्तक के लिए सबसे पहले तो मैं रब का शुक्र अदा करता हूं। अत्यंत व्यस्तता के भ्रम और बीमारी के चलते मैं इसे लिखने के पक्के इरादे के बावजूद शायद यह काम पूरा नहीं कर पाता। कुरआन के मुताबिकः

...तो संभव है कि एक चीज तुम्हें पसंद न हो और अल्लाह उसमें बहुत कुछ भलाई रख दे। (४-१९)

पैगंबरे इस्लाम हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने कहा है – 'जो इंसानों का शुक्रिया अदा नहीं करता वह अल्लाह का शुक्र भी अदा नहीं करता।' इसलिए सबसे पहले महत्वपूर्ण संबल, प्रोत्साहन और सहयोग के लिए मैं अपनी धर्मपत्नी 'सैलोना' का आभार मानता हूं। यह मुझे अजीब भी लगता है क्योंकि तिरपन (५३) साल पहले हुए हमारे विवाह के बाद से यह परंपरा निरंतर चली आ रही है।

मैं अपने भाइयों, दोस्तों का भी आभारी हूं, जो मुझे लिखने के लिए प्रेरित करते रहे, यह वास्तविकता बताकर कि महत्वपूर्ण व उपयोगी व्याख्यानों के बावजूद लिखे हुए शब्द ज्यादा समय तक जिंदा रहते हैं। सो उनका आभार मानना आवश्यक है।

अभिन्न और आत्मीय मित्र श्रीमती कैरोल डी मार्स का मैं विशेष रूप से आभारी हूं। उन्होंने बड़ी मेहनत से मेरे काम की समीक्षा कर अमूल्य परामर्श दिए।

अपने प्रकाशक का भी मैं सदैव आभारी रहूंगा, जिन्होंने मेरा कार्य रुचिकर और सरल बना दिया।

और अंत में महत्वपूर्ण, मेरी सहयोगी कु. हेदब अलतारीफी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अनिवार्य है, जिन्होंने पांडुलिपि टाइपिंग के दौरान होते रहे लगातार फेरबदल के बावजूद पूरी तन्मयता से काम किया। अल्लाह इन सबको इसका फल दे।

\- हस्सान हतहूत

सूची

अध्याय पांच

प्रस्तावना

\- शेख अहमद ज़की यमनी*

विश्व के अन्य तमाम धर्मों की तुलना में इस्लाम कुछ अलग नजर आता है। वह इस तरह कि इसका नाम किसी जाति या किसी व्यक्ति विशेष पर आधारित नहीं है। जैसे जूडिज्म जूडिया से, क्रिश्चियनिट क्राइस्ट से बुद्धिज्म बुद्ध से निकले हैं। लेकिन इस्लाम पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्लाहु अलैहि व सल्लम) के नाम पर आधारित नहीं है। हालांकि कुछ ओरिएंटलिस्ट ने इसे 'मुहम्मडंस' और 'मुहम्मडनिज्म' के नाम देने की कोशिश जरूर की लेकिन न तो मुसलमानों ने इसे अपने मजहब के लिए पसंद किया, न खुद के लिए।

शब्द इस्लाम की व्युत्पत्ति दो शब्दों से हुई है। जो हैं 'तस्लीम' (समर्पण) और 'सलाम' (शांति)। इन दोनों शब्दों में इस्लाम का सार निहित है। यह मानव और उसके सृष्टिकर्ता यानी अल्लाह तथा मानव और मानव के बीच आपसी संबंधों की संपूर्ण व्याख्या करता है।

अल्लाह तआला और इंसानों के बीच संबंध उस संपूर्ण समर्पण पर आधारित है, जो इस कायनात के खालिक व मालिक और प्राणी मात्र के बीच स्थित है। शब्द इस्लाम के मायने ही पूर्ण समर्पण है। यह मायने इस्लाम के पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के जरिये लाए गए पैगाम तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि कुरआन में अनेक पैगंबरों का जिक्र मिलता है, जो हजरत मुहम्मद (सल्ल.) से पहले इस संसार में आए और इस्लाम का पैगाम दिया। पैगंबर

मुहम्मद (सल्ल.) के पूर्ववर्ती पैगंबर इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) और अन्य पैगंबरों का मजहब भी इस्लाम ही था। इस बाबत कुरआन कहता है:

तुम्हारे बाप इब्राहीम के पंथ को तुम्हारे लिए पसंद किया। उसने (अल्लाह ने) इससे पहले तुम्हारा नाम मुस्लिम (आज्ञाकारी) रखा था और इस ध्येय से ताकि रसूल तुम पर गवाह हो और तुम लोगों पर गवाह हो। (२२-७८)

दूसरी ओर इंसानों के आपसी संबंध, शब्द इस्लाम के एक और अर्थ यानी 'शांति' से भी नियंत्रित होते हैं, जिसमें सहनशीलता और कृपा शामिल हैं। मुस्लिम के मायने समझाते हुए हमारे नबी हजरत मुहम्मद (सल्ल.) फरमाते हैं 'मुसलमान वह है जिसकी जुबान और हाथ से मुस्लिम सुरक्षित रहें।' पैगंबर मुहम्मद ने सहनशीलता व सहनशील लोगों की बहुत तारीफें भी की हैं। वे कहते हैं 'सहनशील लोगों पर खुदा की मेहरबानी है, उनके लिए भी जो खरीदने-बेचने में भी सहनशील हैं।'

युद्ध के लिए पैगंबर (सल्ल.) ने जो कायदे बताए हैं, वे सेना के लिए नए विधान जैसे हैं। इनके अनुसार मुसलमान, गैर मुस्लिमों से तभी युद्ध करें, जब उन्हें विरोधियों की जानिब से धमकियां मिलें। इसी आधार पर अल्लाह की जानिब से मुसलमानों को युद्ध की इजाजत दी गई है। कुरआन के शब्दः सुन ली गई उन लोगों की बात जिनके विरुद्ध युद्ध किया जा रहा है, क्योंकि उन पर जुल्म किया गया। और निश्चय ही अल्लाह उनकी सहायता का पूरा सामर्थ्य रखता है।(२२-३९)

अमूमन मुस्लिमों व गैर मुस्लिमों के रिश्ते तथा खासकर मुस्लिमों व अह्ले किताब (वे कौमें जिनके पास आसमानी किताबें हैं, मसलन यहूदी, ईसाई। - अनुवादक) के रिश्ते बहुआयामी हैं। ये किसी परिचर्चा का विषय होने के बजाय इस प्रकार के रिश्तों से परीचित होने की मांग करते हैं। इस वक्त इतना ही कहना काफी होगा कि सहनशीलता और शांति, ये दो सिद्धांत इन रिश्तों को नियंत्रित करते हैं। कुरआन और हदीस (पैगंबर मुहम्मद (सल्ल.) के कर्म व कथन) में भी यही कहा गया है। इतिहास में जहां कहीं भी इन सिद्धांतों के विपरीत घटनाएं पाई जाती हैं, इस्लाम से उनका कोई संबंध नहीं है, वे मुसलमानों से संबंधित हैं। ठीक उसी तरह जैसे ईसाइयों का गैर ईसाइयत भरा व्यवहार उन्हीं से संबद्ध किया जाना चाहिए न कि हजरत ईसा (अ.) की शिक्षाओं से।

इस्लाम इस वास्तविकता से भी पहचाना जाता है कि मुसलमान जहां दूसरों के साथ शांति से रहे, वहीं यही शांति उसके अंतर्मन में भी होना चाहिए। यह भी अल्लाह के प्रति पूर्ण समर्पण का एक अनिवार्य प्रभाव है कि अल्लाह के आदेशों के सम्मुख मुसलमान खुद को पूरी तरह समर्पित कर दे। आध्यात्मिक व भौतिक जीवन के बीच आपसी सद्भाव व सहभागिता इस्लाम को विशिष्टता प्रदान करती है। इसीलिए तो मुसलमान अपनी आस्था व विश्वास के

तहत भौतिक साधनों, सुविधाओं का उपभोग धार्मिक शिक्षाओं के अनुसार करता है।

इस्लामी विधान से परिचित लोग ऐसे मुसलमानों के व्यवहार व उनके कारोबार की सराहना करते हैं। इस्लाम में इबादत ज़ुबानी व शारीरिक क्रियाकलापों पर आधारित है। इसका उद्देश्य आध्यात्मिक रूप से ईश्वर की ओर उन्मुख होने की पुष्टि करना व इस पर जोर देना है। मुसलमानों द्वारा रोजाना की जाने वाली इबादत 'नमाज' में कई शारीरिक क्रियाएं होती हैं। इनमें से 'रुकू' (झुककर दोनों हाथों से घुटने पकड़ना) अल्लाह तआला की महानता के आगे खुद कुछ नहीं होने का भाव प्रदर्शित करता है। उस समय विशेष रूप से यह शब्द 'प्रशंसा अल्लाह की जो महान है' कहे जाते हैं। इसी तरह 'सज्दे' की स्थिति है। इसमें धरती पर माथा टेककर सेवक उस सर्वशक्तिमान के सम्मुख पूर्ण रूप से नतमस्तक होने का भाव प्रकट करता है। उस समय विशेष रूप से पढ़े जाने वाले शब्द हैं 'प्रशंसा अल्लाह की जो सर्वश्रेष्ठ है।' यह क्रियाकलाप उस सर्वशक्तिमान सृष्टिकर्ता यानी अल्लाह की कृपा के प्रति मुसलमानों की असीम आस्था व विश्वास तथा उसी अल्लाह की इबादत करने का भाव प्रकट करते हैं। रुकू में झुकना व सज्दे में माथा टेकना अल्लाह के प्रति मुसलमानों की असीम श्रद्धा दिखाते हैं। यह आस्था, श्रद्धा सिर्फ अल्लाह के लिए है, उसके अलावा अन्य कोई इसका पात्र नहीं है। कुरआन ने मुसलमानों को सिखाया है- हम तेरी ही बंदगी करते हैं और तुझी से मदद मांगते हैं।(१-४) जहां तक अन्य समुदायों के साथ मुसलमानों के व्यवहार का मामला है, उनकी आस्था उन्हें सबसे समान व्यवहार की सीख देती है।

मानव इतिहास ने अनेक सभ्यताएं देखी हैं। जैसे चीनी, फिरऔनी (फेरोनिक), यूनानी, पारसी और रोमन। यह इस्लामी सभ्यता का भी साक्षी है। इस्लाम से पूर्व की हर सभ्यता की कुछ न कुछ विशेषता रही है, जो इन्हें दूसरी सभ्यताओं से अलग करती है। जैसे यूनानी सभ्यता की पहचान उसका विशेष दर्शन है तो भवन निर्माण कला रोमन सभ्यता की विशेषता रही है। दूसरी ओर इस्लामी सभ्यता ने सभी क्षेत्रों में ज्ञान का उदय किया। इनमें चिकित्सा विज्ञान, ज्योतिष शास्त्र, रसायन शास्त्र, गणित व दर्शन शास्त्र के साथ ही स्थापत्य कला भी शामिल है। लेकिन इन सबसे महत्वपूर्ण तथ्य जो इस्लामी सभ्यता को पूर्ववर्ती सभ्यताओं में विशिष्ट बनाता है, वह इसका इतिहास सम्मत होना है। जैसे हम यह बता सकते हैं कि हजरत मुहम्मद (सल्ल.) पर 'वही' (ईश्वरीय

संदेश) सातवीं सदी ईस्वी में अवतरित हुई। इसके विपरीत अन्य सभ्यताओं को पनपने में सदियां लगीं। उनके पास अपने प्रारंभिक समय के बारे में कोई प्रामाणिक जानकारियां नहीं हैं। अन्य सभ्यताएं शुरुआत में अपने सामाजिक परिवेश से भी कोई खास सरोकार नहीं रखती थीं।

सातवीं सदी में मक्कावासी अरबों का भी ज्ञान से कोई नाता नहीं था, सो वे ऐसी किसी सभ्यता की नींव नहीं रख सकते थे, जिसकी पहचान ही ज्ञान हो। यह तो पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) का संदेश ही था, जिसने उन्हें अपनी अज्ञानता से बाहर निकालकर निरंतर ज्ञान की ओर उन्मुख होते समाज में बदल डाला। इसी ईश्वरीय संदेश की मदद से पैगंबर मुहम्मद (सल्ल.) ने अल्प ज्ञानी अरबों को ऐसी दिशा दी कि वे उस समय प्रचलित ज्ञान की हर शाखा से न सिर्फ परिचित हुए बल्कि आने वाला इतिहास भी बदल डाला।

इसके लिए यह नहीं किया कि कुरआन और 'सुन्नत'[१] के माध्यम से प्राचीन अरब के सारे तौर-तरीके ही बदल डाले गए। पुराने रीत-रिवाजों में से कुछ स्वीकार्य रहे, कुछ में फेरबदल कर उन्हें नए इस्लामी विधान के अनुसार ढाल लिया गया।

निश्चित ही जो तौर-तरीके इस्लाम विरोधी थे, उन्हें चलन से बाहर कर दिया गया। उनमें से कुछ तरीके जो कुरआन व सुन्नत के मुताबिक नहीं थे, उनके लिए इस्लामी अध्येताओं और विधि विशेषज्ञों ने विशेष अध्ययन किए। इस अध्ययन के माध्यम से 'बद्दू' अरबों के कुछ प्राचीन तौर-तरीके 'शरई' (इस्लामी विधि सम्मत) हो गए।

हालांकि शरीअत का यह हिस्सा अपरिवर्तनीय नहीं माना गया और हर दौर के विद्वान विधि विशेषज्ञों की दृष्टि में हमेशा ही छानबीन का विषय रहा। यह ऐसा मुद्दा है जो लंबी बहस व समीक्षा मांगता है, फिर भी पारिवारिक नियमों के एक या दो उदाहरण से शायद बात स्पष्ट हो सके।

इस्लाम पूर्व के अरब में पुरुषों को बहुविवाह तथा पत्नियों को तलाक देने का एकतरफा अधिकार प्राप्त था। एक व्यक्ति कई पत्नियां रख सकता था, उनमें से किसी को भी कभी भी तलाक दे सकता था या बदल सकता था। इस पर किसी का नियंत्रण नहीं था। पैगंबर हजरत मुहम्मद के जीवन के पूर्वार्द्ध तक यही सब कुछ

चलता रहा। बाद में इस्लाम ने एक से अधिक पत्नियां रखने पर अंकुश लगाते हुए इसे नियमबद्ध कर दिया। यह शर्त लगा दी कि एक से अधिक पत्नियां वही व्यक्ति रख सकता है, जो उनसे समान व्यवहार कर सके।

इसके बावजूद एक से ज्यादा पत्नियां रखने के इच्छुक पुरुषों के लिए अन्य नियम भी सख्त किए गए। जैसे अनाथ बच्चों की खातिर उनकी मां से विवाह करने वाले पुरुषों के लिए भी कई नियम हैं। इस बाबत कुरआन ने ऐसे लोगों को कड़ी चेतावनी दी है जो अनाथ बच्चों की संपत्ति देख उनकी मां से विवाह करने की इच्छा रखते हैं। जो लोग अनाथों का माल अन्याय के साथ खाते हैं, वास्तव में वे अपने पेट आग से भरते हैं, और वे अवश्य भड़कती हुई आग में पड़ेंगे। (४-१०)

वे मुसलमान जिनके सुपुर्द अनाथों की संपत्ति की गई है, उन्हें भी चेताया और डराया गया है कि यदि यह संपत्ति अनजाने में ही उनकी संपत्ति के साथ मिल गई और अनाथों को देने से इंकार किया गया तो पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ईश्वरीय विधि (शरीअत) के अनुसार ऐसे अनाथों को उनका अधिकार दिलाएंगे। इसे कुरआन की एक और आयत ऐसे स्पष्ट करती है:

और यदि तुम्हें आशंका हो कि तुम अनाथों (अनाथ लड़कियों) के प्रति न्याय न कर सकोगे तो उनमें से, जो तुम्हें पसंद हों, दो-दो या तीन-तीन या चार-चार से विवाह कर लो। किंतु यदि तुम्हें आशंका हो कि तुम उनके साथ एक जैसा व्यवहार न कर सकोगे, तो फिर एक ही पर बस करो... (४-३)

यह खेदजनक है कि बहुविवाह के लिए कुरआन ने जो विधिक उदारता दिखाई है, मुसलमानों ने बहुधा उसका दुरुपयोग किया है। उन्होंने उन परिस्थितियों और चेतावनियों को लगभग अनदेखा कर दिया, जो बहुविवाह के संबंध में दी गई हैं। दुर्भाग्यपूर्ण तरीके से कुछ वर्ग के पुरुषों ने बहुविवाह की इजाजत को अनेक महिलाओं से यौन संबंध स्थापित करने का लाइसेंस मान लिया।

खासकर कई 'अरबवासियों' ने धनवान होने के बाद बहुविवाह की आज्ञा को अपवाद समझने के बजाय एक तरीका मान लिया। हालांकि वे एक समय में चार पत्नियों की सीमा से बाहर नहीं जाते थे लेकिन जब भी उनका मन पत्नी बदलने का होता वे किसी एक को फौरन तलाक दे देते। इस तरह वे शारीरिक सुख पाने के लिए

तलाक का इस्तेमाल करते। यह जानते हुए भी कि विधिसम्मत होने के बावजूद पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने तलाक के बारे में कहा है कि 'यह जायज चीजों में से अल्लाह को सख्त नापसंद है।'

इसके अलावा कुरआन इस बारे में स्पष्ट करता है कि यह विधिसम्मत अप्रिय कृत्य कैसे जीवन को प्रभावित करता है। वैवाहिक जीवन पर खतरा उत्पन्न होने लगे तब मध्यस्थों की सहायता से दंपति में सुलह का मार्ग निकालने के प्रयास किए जाने चाहिएः

और यदि तुम्हें पति-पत्नी के बीच बिगाड़ का भय हो, तो एक फैसला करने वाला पुरुष के लोगों में से और एक फैसला करने वाला स्त्री के लोगों में से नियुक्त करो। यदि वे दोनों सुधार करना चाहेंगे, तो अल्लाह उनके बीच अनुकूलता पैदा कर देगा... कुरआन (४-३५)

मध्यस्थों के प्रयास असफल होने की स्थिति में पति एक बार तलाक दे सकता है। इसके बाद तीन माह दस दिन की मोहलत दी जाए। इस दौरान पत्नी पति के घर में ही रहे, ताकि उसका जीवनसाथी यदि अपने निर्णय पर पुनर्विचार करना चाहे तो उसे इसका अवसर प्राप्त रहे।

वही कानूनी उपाय जो अल्लाह की नजरों में सख्त नापसंदीदा है। यदि तब भी बात नहीं बने तब एक तलाक प्रभावी मानी जाए। यह तलाक दो बार दी जा सकती है, लेकिन तीसरी बार भी इस तरह तलाक देने की नौबत आ जाए तो वह तत्काल प्रभावी होती है। पति-पत्नी तब सदा के लिए अलग हो जाते हैं, तब तक कि जब तक पत्नी किसी दूसरे व्यक्ति से निकाह न कर ले तथा वह व्यक्ति उसे तलाक न दे दे। कुरआन के शब्दः

तलाक दो बार है। फिर सामान्य नियम के अनुसार (स्त्री को) रोक लिया जाए या भले तरीके से विदा कर दिया जाए... (२-२२९)

(दो तलाकों के पश्चात) फिर यदि वह उसे तलाक दे दे, तो इसके पश्चात वह उसके लिए वैध न होगी, जब तक कि वह उसके अतिरिक्त किसी दूसरे पति से निकाह न कर ले। अतः यदि वह उसे तलाक दे दे तो फिर उन दोनों के लिए एक-दूसरे को पलट आने में कोई गुनाह न होगा, यदि वे समझते हों कि अल्लाह की सीमाओं पर कायम रह सकते हैं... (२-२३०)

इस बाबत कुरआन के स्पष्ट आदेश होने के बावजूद कभी-कभी पति

तीनों तलाक एकसाथ दे देते हैं। कुछ मुस्लिम विद्वान तीन तलाकों के बीच दिए जाने वाले समय व एक बार में ही तीन तलाक को लेकर दुविधा में हैं। उनके अनुसार एक ही बार में तीन तलाक देने पर तीन तलाकों के बीच सोचने-विचारने का जो समय है, वह दंपत्ति को नहीं मिल पाता है।

जबकि इसके बारे में कुरआन में निर्देश दिए गए हैं। इसलिए एक ही बार में तीन तलाक को एक माना जाए या इसे तीन तलाक ही मान लिया जाए इसे लेकर दुविधा रहती है। इसीलिए द्वितीय खलीफ हजरत उमर इब्ने खत्ताब (रजि.) ने जब देखा कि लोग तलाक जैसे गंभीर मामले को हल्के-फुल्के में लेकर तीन तलाक एक साथ दे देते हैं तो उन्होंने उसे तीन तलाक ही मान लेने का फरमान जारी कर दिया।

इसके अलावा पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) की शिक्षा के अनुसार यह भी स्पष्ट किया गया कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में भी पुरुष अपनी पत्नी को तलाक नहीं दे सकता, जैसे कि मासिक धर्म की अवस्था में या दो मासिक धर्मों के बीच यौन संबंध स्थापित हुआ हो तो इस दौरान (मासिक धर्म की अवस्था में यौन संबंध स्थापित करने की मनाही है।) तलाक नहीं दिया जा सकता। पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के साथी हजरत अब्दुल्लाह इब्न उमर ने यह नियम तोड़ा तो पैगंबर ने उन्हें वापस अपनी पत्नी के पास लौट जाने के निर्देश दिए।

ये ऐसे दुखद उदाहरण हैं, जो कुछ मुस्लिम समाज में प्रचलित हैं। ऐसे उदाहरणों से विश्लेषणकर्ताओं के एक वर्ग में हमारी विधिक व्यवस्था के प्रति संशय का भाव उत्पन्न हो गया है। जबकि शरीअत, खासकर इसके महिलाओं और संवैधानिक मामलों से संबंधित अनुभाग एक अनुकरणीय विधिक व्यवस्था रखते हैं। ये अनुभाग मानवाधिकारों की रक्षा के साथ समाजों को बांधे रखने व वैयक्तिक अधिकारों की सुरक्षा में पूरी तरह सक्षम हैं।

शरीअत के नियम मानवता की ऐसी सेवा करते हैं जैसा दूसरा कोई-सा विधान नहीं कर पाता। यह निश्चित ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि उन्हीं नियमों को इस्लाम के तहत सख्त सजा देने की कुछ मुसलमानों की प्रवृत्ति के चलते ग्रहण लग गया है। इससे इस्लाम के बारे में गलतफहमियां फैल गईं और मुसलमान किसी अन्य ग्रह के प्राणी की तरह माने जाने लगे। इस्लाम मानवीय गरिमा बचाने और उसके संरक्षण की बात ज्यादा करता है, न कि चोर के

हाथ काट देने तथा बलात्कारी को संगसार कर देने यानी पत्थर मार-मारकर मौत के घाट उतार देने की। सख्त सजाओं की एक वजह अपराधियों में न्याय का भय पैदा करना भी है। इसमें एक तथ्य यह है कि सजा देने से पहले कई प्रक्रियाएं पूरी की जाती हैं। इसके लिए पुख्ता सबूत जुटाना भी दुष्कर होता है, इतना कि सजा का क्रियान्वयन व्यावहारिक रूप से असंभव हो सकता है।

थोड़े आश्चर्य की बात है कि इस्लामी समाज को वास्तव में दयालु व सौहार्दपूर्ण माना जाता है। उच्च आदर्शों वाली एक सभ्यता तैयार करने के लिए इस्लाम ने कुछ नियम तय किए हैं। इनके अनुसार एक उच्चस्तरीय सभ्य समाज का आवश्यक घटक 'मानव' निश्चित ही उच्च मानकों पर खरा उतरने वाला होना चाहिए, जैसा कि उसके रचयिता ने उसे आदर्श रूप में तैयार किया है।

दुनिया में मौजूद तरह-तरह के लुभावने आकर्षण मुसलमानों की अल्लाह के प्रति निष्ठा और लगाव पर प्रहार करते रहते हैं। ऐसे माहौल में आज के किसी भी मुस्लिम समाज से पूरी तरह इस्लाम पर चलने की आकांक्षा रखना हकीकत से दूर होना है। अपने जीवन में मैं इस तरह के चंद लोगों से ही मिल पाया हूं, जो पूरी तरह इस्लाम का पालन करते हों और यह मैं पूरे विश्वास से कह सकता हूं कि डॉ. हस्सान हतहूत उनमें से एक हैं। इसलिए उनकी पुस्तक 'मुस्लिम मानस का अध्ययन' का परिचय लिखने का आमंत्रण पाकर मुझे बहुत खुशी हुई। उनकी पुस्तक का अध्ययन करने से भी पहले उनके विचारों से परिचय ने 'वास्तविक आदर्शों' के इस विश्व की सुखद यात्रा शुरू करने में बहुत मदद की।

डॉ. हतहूत इस्लाम की आत्मा को बेहतर ढंग से समझते हैं, जैसा कि उसे समझा जाना चाहिए। इसलिए अल्लाह और एकेश्वरवाद में उनका अडिग विश्वास ही न केवल अल्लाह के संदेश और पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) की शिक्षाओं को अंगीकार करने में सहायक है बल्कि इसे तर्कसंगत व विवेकपूर्ण ढंग से सबके सामने रखने में भी सक्षम है। कुरआन की आयतों के संदर्भ सहित ऐसे मानसिक प्रयास इंसान को सृष्टि की रचना और उसके साथ संबंधों पर विचार करने, मंथन करने को प्रेरित करते हैं। इसी से व्यक्ति को सृष्टिकर्ता की पहचान भी होती है। कुरआन के अनुसारः

निस्संदेह आकाशों और धरती रचना में और रात और दिन के आगे-पीछे बारी-बारी आने में उन बुद्धिमानों के लिए निशानियां हैं। (३-१९०)

जो खड़े, बैठे और अपने पहलुओं पर लेटे अल्लाह को याद करते हैं और आकाशों और धरती की रचना में सोच-विचार करते हैं। (वे पुकार उठते हैं) 'हमारे रब! तूने यह सब व्यर्थ नहीं बनाया है। महान है तू...' (३-१९१)

'गॉड' शीर्षक से इस पुस्तक का प्रथम अध्याय रास्ता दिखाता है, जिसके माध्यम से मुस्लिमजन अल्लाह को अच्छे से जान सकते हैं। लेखक की शैली एक तरफ युवाओं को कायल करने वाली है, वहीं परिपक्व लोगों तथा वयस्क नास्तिकों को प्रेरित करती है।

अल्लाह का अस्तित्व अकाट्य सत्य है, इसका तर्कसंगत विश्लेषण लोगों का मार्गदर्शन करता है। दूसरा अध्याय अल्लाह के अस्तित्व को और अधिक तर्कसंगत व विश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। इस अस्तित्व का मानवों पर प्रभाव, मृत्यु उपरांत पुनर्जीवन, मनुष्य तथा दानव के बीच भेद और विश्व के तीन बड़े एकेश्वरवादी धर्म यहूदी, ईसाई व इस्लाम की चर्चा की गई है, जिनका प्रारंभ एक ही कुलपिता इब्राहीम से हुआ।

पुस्तक का तीसरा अध्याय इस्लाम की रुचिकर व वस्तुनिष्ठ व्याख्या के साथ इसका दूसरे दो अन्य धर्मों के साथ संबंध भी बताता है। इस्लाम के बारे में जानकारी नहीं रखने वाले गैर मुस्लिम पाठक ईसाई मत के साथ इस्लाम के संबंधों के बारे में जानकर आश्चर्यचकित रह जाएंगे। कुरआन कहता है:

और ईमान लाने वालों के लिए मित्रता में सबसे निकट उन लोगों को पाओगे, जिन्होंने कहा कि 'हम नसारा हैं।' यह इस कारण है कि उनमें बहुत से धर्मज्ञाता और संसार त्यागी संत पाए जाते हैं। और इस कारण कि वे अहंकार नहीं करते। (५-८२)

पाश्चात्य सभ्यता के विभिन्न अनुशासनों व कलाओं पर इस्लाम ने स्पष्ट प्रभाव छोड़े हैं। इसने पश्चिमी जगत को वह आधार दिया जिस पर उनकी सभ्यता खड़ी हो सकी। अरबी शब्दों और उनके अनुवादों का उदारता से अंगीकार इस बात को पुष्ट करता है।

उदाहरण के तौर पर 'यूनिवर्सिटी' के लिए अरबी में 'जामिआ' शब्द का उपयोग किया जाता है। यह शब्द 'जामी' से व्युत्पन्न है। जामी का अर्थ है नगर की बड़ी मस्जिद। ऐसी मस्जिद जहां विभिन्न अनुशासनों जैसे चिकित्सा, ज्योतिष शास्त्र, विधि आदि की शिक्षा दी जाती है।

यहां विद्यार्थी शिक्षकों के आसपास एक घेरा बनाकर बैठते हैं।

पश्चिम ने इसका अनुसरण किया। जिनमें शिक्षा दी जाए ऐसे भवनों के लिए आधुनिक इंग्लिश में अरबी शब्द 'जामी' की जगह लैटिन शब्द यूनिवर्सिटाज या यूनिवर्सिटी का उपयोग किया गया। इसी तरह मुस्लिम विद्यार्थियों द्वारा शिक्षा पूरी कर लेने के बाद दी जाने वाली डिग्री को 'इजाजः' कहा जाता था।

यह शब्द 'लाइसेंस' के अर्थ में भी इस्तेमाल होता है। कुछ यूरोपी देशों में अकादमिक डिग्रियों के लिए भी इस शब्द का उपयोग किया जाता है।

अब यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि मुसलमानों व ईसाइयों के बीच पहले से चला आ रहा मनमुटाव राजनीतिक है। इस्लाम का एक धर्म के रूप में उदय इसका कारण नहीं है और लेखक ने इसे स्पष्ट किया है कि आज की सबसे प्रभावशाली सभ्यता को यहूदी-ईसाई सभ्यता कहना गलत है।

यह असल में प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्यों को झुठलाने जैसा है, जो प्रारंभिक दौर के मुसलमानों पर इस सभ्यता के स्पष्ट प्रभाव को दिखाते हैं। इससे भी महत्वपूर्ण यह कि इन मुसलमानों पर यहूदियों का ज्यादा प्रभाव नजर आता है। इसलिए आज की सभ्यता को यहूदी, क्रिश्चियन, इस्लामी सभ्यता कहना ज्यादा उपयुक्त होगा।

यह अध्याय बताता है कि यहूदी जिन्हें अपना पैगंबर मानते हैं, उन मूसा (अलैहिस्सलाम) का जिक्र कुरआन में पूरे सम्मान के साथ मौजूद है। मूसा (अ.) और उनकी कौम के संघर्ष का जिक्र कुरआन में अनेक बार आया है बल्कि वास्तव में तो मूसा का जिक्र कुरआन में हमारे पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) से भी ज्यादा मिलता है।

अल्लाह की उन दोनों पर रहमत (कृपा) हो। इस्माईल, इस्हाक, याकूब, मूसा, हारून, दाऊद, सुलैमान और यूसुफ जैसे पैगंबरों को मुसलमान भी पूरी तरह सम्मान देते हैं। यह तमाम संकेत हैं कि मुसलमानों व यहूदियों के बीच विवाद धार्मिक न होकर राजनीतिक है।

वास्तव में तो यहूदी पहला समुदाय होगा जो यह स्वीकारता है कि वे इस्लामी राज्यों में खुद को अधिक सुरक्षित महसूस करते हैं और वहां उनसे अच्छा व्यवहार किया जाता है। स्पैन में जब इस्लामी शासन खत्म होने लगा तो यहूदी भी उस देश को छोड़कर अन्य इस्लामी देश में चले गए, जहां उस्मान वंश का शासन था।

ठीक इसी तरह यदि इन अपेक्षित संबंधों की बाबत गंभीरता व राजनीतिक इच्छाशक्ति दिखाई जाए तो इस्लामी व ईसाई जगत में भी सहिष्णुता व सहयोग का मजबूत बंधन हो सकता है।

दोनों धर्मों के बीच मतभेद दुश्मनी का कारण न बनें। दोनों के समान हित खासे हैं इसलिए चाहिए कि मुसलमानों के साथ होता रहने वाला अन्याय समाप्त हो। यह समय है कि सदियों से चला आ रहा यह सब और दोनों के बीच की कड़वाहट और विद्वेष को खत्म कर मित्रता का नया अध्याय शुरू किया जाए।

पुस्तक का चौथा अध्याय लंबा और काफी महत्वपूर्ण है। यह इस्लाम का सटीक विश्लेषण करता है। डॉ. हतहूत ने संक्षेप में इस्लामिक विधि यानी शरीअत के साथ धर्म से राज्य व प्रजातंत्र के संबंधों का भी जायजा लिया है। इस अध्याय में वे इस्लाम के आध्यात्मिक पहलू का भी अध्ययन करते हैं। जैसे इबादत के मामले और नैतिक संदेश जो मुसलमानों में अनुशासन के साथ करुणा, दया और हर अच्छी चीज के प्रति प्रेम पैदा करते हैं। डॉ. हतहूत द्वारा प्रस्तुत शरीअत के रोचक विश्लेषण में मुझे एक और महत्वपूर्ण सूत्र जोड़ना है। वह यह कि दो वस्तुओं के बीच एक स्पष्ट अंतर कर दिया जाना चाहिए। कुरआनी नियम और निर्देश तथा पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के कर्म और उनके कथन।

इस्लामी विधि यानी शरीअत के ये पावन और पुष्ट स्रोत हैं। दूसरी ओर विभिन्न मतावलंबी मुस्लिम न्यायविद और अध्येताओं द्वारा लंबे समय से बड़ी संख्या में नियम प्रतिपादित किए गए हैं। ये नियम मुसलमानों के लिए धार्मिक बंधन नहीं हैं और इन्हें कुरआन व हदीस की तरह पावन और पुष्ट नहीं माना जा सकता।

जनहित के सहारे इस्लामिक विधि यानी शरीअत में कई रास्ते निकाल लिए गए। इसके स्रोत को न्यायविदों ने 'मसालीह मुरसलाह' कहा। इसे हम आम भाषा में 'जनहित' कह सकते हैं। पूर्व के न्यायविदों ने इसका उपयोग ऐसी स्थितियों के लिए किया जो पैगंबर मुहम्मद (सल्ल.) के समय में मौजूद नहीं थीं। इसलिए इनका जिक्र कुरआन व हदीस में नहीं मिलता है।

न्यायविदों ने 'जनहित' देखते हुए निर्देश देने शुरू कर दिए। कुछ तो इससे भी आगे बढ़ गए और कुरआन व हदीस तथा जनहित में जहां टकराव पैदा हुआ, वहां जनहित को वरीयता दे दी। यह ऐसी स्थिति थी, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी।

बदलते समय के साथ पैदा होने वाली नई समस्याओं के साथ तालमेल बिठाने के लिए मुस्लिम समुदाय में बदलाव के साथ शरीअत के परिवर्धन की भी जरूरत थी। और यह बहुत जल्दी शुरू हो गया। हजरत मुहम्मद के स्वर्गारोहण के बाद इस्लाम के दूसरे खलीफा और निर्भीक व्यक्तित्व के स्वामी हजरत उमर इब्ने खत्ताब (रजिअल्लाहू अन्हा) दूर तक गए।

यहां तक कि उन्होंने कुरआन के कुछ प्रावधानों को स्वीकार या निरस्त करने जैसे कार्य भी किए।* यह प्रस्तावना इस विषय पर विस्तार से चर्चा करने का स्थान नहीं है, सो मैं अपनी टिप्पणी 'इज्तिहाद' (धार्मिक मामलों में नवाचार) को लेकर दो महत्वपूर्ण विचारधाराओं के अंतर स्पष्ट करने तक या इसमें न्यायिक तर्क बुद्धि के उपयोग तक सीमित रखूंगा।

इनमें से एक धारा कुरआन व हदीस पर अत्यंत श्रद्धा रखने वाली उसका अक्षरशः पालन करते हुए उसके दीगर पहलुओं को नजरअंदाज करने वाली, जबकि दूसरी धारा शब्दों के गूढ रहस्यों की तह तक पहुंचने के प्रयास करते हुए उनके विधि सम्मत तर्क ढूंढने में विश्वास रखने वाली है।

डॉ. हतहूत ने सैनिकों से संबंधित वह घटना प्रस्तुत की है, जिसमें उन्हें 'बनी कुरैदा' के साम्राज्य से इतर अस्र की (दिन के तीसरे पहर वाली) नमाज नहीं पढ़ने के निर्देश दिए गए थे। जब अस्र की नमाज का वक्त उस स्थान तक पहुंचने से पहले खत्म होने को हुआ तो कुछ लोगों ने नमाज पढ़ने को वरीयता दी। उन्होंने पैगंबर (सल्ल.) के निर्देश को अक्षरशः न लेते हुए उसके अर्थ को आधार मानकर यह निर्णय लिया। उनके अनुसार पैगंबर (सल्ल.) ने उन्हें अस्र की नमाज से रोका नहीं था बल्कि इस आदेश से आशय यह था कि वे जल्दी अपनी मंजिल तक पहुंचें। इधर कुछ सैनिकों ने इस आदेश के शब्दों को महत्वपूर्ण माना और नियत स्थान तक पहुंचने से पहले अस्र की नमाज अदा नहीं की। बाद में पैगंबर (सल्ल.) ने दोनों पक्षों के अमल को दुरुस्त करार दिया क्योंकि दोनों गहरी श्रद्धा पर आधारित थे।

अपने इज्तिहाद में उमर इब्ने खत्ताब उस विचारधारा से संबंध रखते थे, जो मात्र शब्दों पर न जाकर उनके गूढ अर्थों पर विचार करते थे। इस्लाम के निर्देशों का विवेचन, उन्हें अंगीकार करना या नई परिस्थितियों के अनुसार उन्हें प्रस्तुत करने में डॉ. हतहूत भी उमर (रजि.) के स्कूल से ही संबंध रखते हैं।

इस्लाम और लोकतंत्र के बीच संबंधों की व्याख्या लेखक ने बहुत अच्छे ढंग से की है। कुरआन और हदीस में इस्लामी सरकार की जो अवधारणा दी गई है, उसमें कहीं भी संवैधानिक तंत्र की व्याख्या स्पष्ट रूप से नहीं की गई है। इनमें दिए आधारभूत सिद्धांतों के आधार पर कोई भी सामान्य संवैधानिक सत्ता काम कर सकती है। इसके मुताबिक शासक दूसरों के द्वारा चुना जाना चाहिए तथा वह नियमों के तहत काम करे।

समुदाय से संबंधी निर्णय बहुमत के आधार पर लिए जाएं। यही 'शूरा' की व्यवस्था का सार भी है। इस्लामी राज्य प्रमुख के तौर पर पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने भी शूरा की व्यवस्था के तहत काम किया। इसके लिए कोई आकाशीय अवतरण नहीं होता था। शूरा के काम करने का तरीका यह था कि तमाम मामलात में समय और स्थान के लिहाज से परिस्थितियों के तहत निर्णय लिए जाते।

इसके लिए सबसे जरूरी तत्व लचीलापन था। खलीफा उमर के दौर में शूरा की बैठक अमूमन मस्जिद में होती थी। गंभीर समस्या पर विचार-विमर्श करने की स्थिति में यह बैठक शहर से बाहर खुले में आयोजित की जाती, जहां सभी संबंधित सलाहकार उपस्थिति होते। सामूहिक रूप से निर्णय लिए जाने तक बैठक चलती। इसमें कई दिन भी लग जाते पर जो निर्णय लिए जाते, शासक उसका पाबंद होता। शूरा की व्यवस्था के तहत बहुमत की सत्ता स्थापित करने के साथ इस्लाम ने मानवाधिकारों को भी दृढ़ता से स्थापित किया। अपने आराध्य की पूजा के साथ अभिव्यक्ति व कहीं भी रहने-बसने की स्वतंत्रता, इस्लामी राज्यों के नागरिकों के लिए समानाधिकारों की स्थापना कर इनकी रक्षा की व्यवस्था भी की।

अन्य देशों ने घुमा-फिराकर बाद में इन्हीं चीजों को अपनी व्यवस्था में शामिल किया। इस्लाम के उदय के बाद से बहुत सारे परिवर्तन आए और दुर्भाग्य से इस्लामी राज्य व्यवस्था के कई मौलिक प्रावधान बदल डाले गए। नतीजा यह हुआकि कुछ इस्लामी देशों में इस्लाम व लोकतंत्र के बीच घृणा आसानी से देखी जा सकती है।

लेखक ने इस्लाम के पांच स्तंभों को संक्षेप में स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है। अमूमन एक मुसलमान बचपन से ये पांचों चीजें सीख लेता है, लेकिन इस अध्याय से गैर मुस्लिम पाठकों को यह समझने में आसानी होगी कि कैसे एक मुसलमान अपनी रोजाना की इबादतों, अल्लाह के आदेशों का पालन व उसके द्वारा रोकी

गई बातों से रुककर उस सृष्टिकर्ता से अपना संबंध मजबूत करने में लगा रहता है।

इसके साथ मुसलमान की जिंदगी के उस हिस्से का भी जिक्र है, जिसमें दूसरों के साथ उसके संबंध व व्यवहार आते हैं। यही किसी का भी ध्यान उसकी ओर खींचता है। इस्लाम ने नैतिकता के उच्च मानदंड स्थापित किए हैं, जो जीवन के हर पहलू से संबंधित हैं।

इनके माध्यम से ही मुसलमान दयालु, सहिष्णु, लज्जावान और अच्छे कर्मों के लिए प्रयत्नशील रहता है। लेखक ने इस बाबत कुरआन व हदीस से सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जो सदियों से मुसलमानों का मार्गदर्शन कर रहे हैं और इसमें सक्षम हैं कि वे गैर मुस्लिमों के सामने इस्लाम का एक सजीव चित्र प्रस्तुत कर सकें।

पांचवां व अंतिम अध्याय उन राजनीतिक, सामाजिक मुद्दों पर आधारित है, जो सारे विश्व में चर्चित व विवादित हैं। लेखक के विचार व सुझाए गए समाधान शरीअत की उनकी गहन समझ दिखाते हैं। लेखक द्वारा प्रस्तुत थ्योरीज, समाधानों से कुछ मुसलमानों के विचार अलग हो सकते हैं। इस्लाम ने ऐसे वैचारिक मतभेदों का स्वागत किया है। इस बाबत पैगंबर ने हमारे लिए यह नियम भी प्रस्तुत किया है 'जिसने सत्य या किसी समस्या के हल की खोज में चिंतन किया और सही उत्तर पा गया, उसके लिए दो नेकियां हैं। और वह जिसने चिंतन किया लेकिन सही उत्तर नहीं खोज सका, उसके लिए एक नेकी है।' मुझे लगता है कि डॉ. हतहूत ने जिस तरह कुरआन व हदीस की गहराइयों में जाकर उसके अर्थ प्रस्तुत करने के प्रयास किए हैं, उसके लिए उन्हें दो नेकियां मिलेंगी, एक नहीं।

* शेख अहमद ज़की यमनी सउदी अरब के पूर्व पेट्रोल व खनिज संसाधन मंत्री तथा अपने समय के मंझे हुए राजनीतिज्ञ हैं। वे इस्लामिक अध्येता भी हैं। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के लॉ स्कूल में इस्लामी शरीअत पर आधारित कोर्स में वे हर साल शिरकत करते हैं। उनकी पुस्तक 'द एवरलास्टिंग शरीआ' (सऊदी पब्लिशिंग हाउस, १९७०) के साथ इस्लाम पर आधारित अनेक आलेख व व्याख्यान प्रकाशित हैं। वे लंदन (इंग्लैंड) स्थित प्रतिष्ठित सेंटर फॉर ग्लोबल एनर्जी स्टडीज के संस्थापक अध्यक्ष होने के साथ अलफुरकानः द इस्लामिक हेरिटेज फाउंडेशन के भी संस्थापक अध्यक्ष हैं। 'अलफुरकान' प्राचीन इस्लामी पांडुलिपियों के संरक्षण, दस्तावेजीकरण तथा प्रकाशन करने वाला महत्वपूर्ण संस्थान है।

खलीफा उमर के यह निर्देश मनमाने नहीं थे, बल्कि वे कुरआन व उसके आदेशों को लेकर उनकी समझ के साथ उस समय की परिस्थितियों पर आधारित थे। ऐसे मौकों पर वे पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के विद्वान साथियों को जमा करके उनका परामर्श मंडल बना लेते। वे सब खलीफा से सहमत थे।

....

1. सुन्नतः 'नियम, पथ, तरीका, चलन या जीवनशैली।' हजरत मुहम्मद (सल्ल.) की जीवनशैली, उनके कथनों व निर्देशों के लिए प्रयुक्त शब्द, जो इस्लामी विधान यानी शरीअत को दूसरा प्रमुख स्रोत है।

....

भूमिका

ब्रिटिश शासकों के हाथों गुलाम मिस्र में मेरा जन्म हुआ। देश की इस गुलामी ने मेरे जीवन में महत्वपूर्ण रोल अदा किया। पुरानी यादों में बसे बचपन को टटोलता हूं तो पाता हूं कि जब मैं छोटा बच्चा था, मां अक्सर कहा करती 'जब तुम मेरे पेट में थे, मैं अक्सर तुम्हें 'हस्सान' कहा करती थी। मैंने तुम्हें मिस्र को ब्रिटिशों से आजाद कराने के लिए समर्पित कर दिया है।'

यह बात जैसे मेरे साथ चिपक गई। नतीजा? न बचपन में बड़ों का दुलार मिला, न ही एक मस्तीभरी किशोरावस्था। एक महान कार्य सामने था, जीवन का एक उद्देश्य था!

देश पर ब्रिटिश कब्जे के खिलाफ अवश्यंभावी जंग में मेरी नस्ल भी अपनी पूर्ववर्ती नस्ल के पदचिन्हों पर चली। ब्रिटिश और उनकी साथी मिस्री सरकार के लिए हम आतंकवादी थे, जबकि बाकी देश और दुनिया के लिए स्वतंत्रता संग्राम सेनानी।

हम भाग्यशाली रहे कि हमने ब्रिटिश शासनकाल का अंत देखा। बाद में जब मैं अपने अध्ययन के लिए ब्रिटेन में रहा तो मेरे दिल में ब्रिटिश अवाम के लिए प्रेम व सम्मान के भाव पैदा हो गए। मुझे इस हकीकत का अहसास हुआ कि अपने राजनीतिज्ञों और सत्ताधारियों द्वारा अपनाई गई विदेश नीति से अवाम काफी भिन्न हो सकते हैं। काफी बाद में जब मैं अमेरिका रहने आया तो यहां आकर भी इसी तरह की अनुभूति हुई।

गंभीरता और समस्याएं हल करना मेरा विद्यार्थी जीवन था। ऑब्सटेट्रिक्स (प्रसूति विज्ञान) और गॉयनेकॉलॉजी (स्त्री रोग विज्ञान) जैसी उच्च चिकित्सकीय शिक्षा के चलते जीवन बहता रहा। एक पुख्ता एकेडमिक आधार के लिए मैंने स्कॉटलैंड की एडिनब्रा यूनिवर्सिटी से पीएचडी की डिग्री हासिल की। मेरे शोध का विषय 'स्टडीज इन नॉर्मल एंड एबनॉर्मल ह्यूमन एंब्रायोजेनेसिस' था।

मुझे इसकी संतुष्टि थी कि यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर व अपने विभाग

का अध्यक्ष बनने, क्लिनीशियन, वैज्ञानिक और अध्यापक का काम करने के साथ अपने प्रोफेशनल क्षेत्र में न केवल क्षेत्रीय बल्कि राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उच्च स्थान पाने जैसे कई ख्वाब पूरे कर पाया।

हालांकि यह सब जैसे मेरे दो फेफड़ों में से एक का काम था, सिर्फ सांस लेना। मेरा असली प्रेम तो धर्म का अध्ययन था, न सिर्फ अपने धर्म का बल्कि दूसरे धर्मों का भी। धर्म का मेरा अध्ययन उतना गहन तो नहीं है, जितना धार्मिक शिक्षा हासिल करने वालों का होता है लेकिन विज्ञान और चिकित्सा शास्त्र के अध्ययन ने मुझे अमूल्य दृष्टि प्रदान की। दृष्टि अपने धर्म पर चिंतन करने, उसे समझने और समझाने की।

द्विभाषी होने व दो संस्कृतियों से संपर्क होने के चलते मुझे यह अहसास हुआ कि पश्चिम में इस्लाम बड़े पैमाने पर इसके लिए पहचाना जाता है जो वह है नहीं। (और कई बार मुझे लगता है कि खुद मुसलमान भी इसमें हिस्सेदारी निभाते हैं)। सतत् इस्लाम की झूठी निंदा करना, इस मजहब की छवि खराब करना तो जैसे कुछ राजनीतिक समूहों, मीडिया और मनोरंजन जगत का एक मिशन व करियर हो गया।

मेरा विश्वास है कि किसी के बारे में जानकारी होना मानव का मौलिक अधिकार है। मेरा इस पर भी विश्वास है कि शांति, भाईचारा और सद्भाव हमारी आपसी समझ व तथ्यात्मक जानकारी पर ही आधारित रहते हैं, न कि झूठ और पुरातनपंथी कथाओं पर। इस जानकारी की बदौलत लोगों को एक-दूसरे की वास्तविक समानताएं व अंतर पता चलते हैं। तब इन अंतर, मतभेदों का सम्मान करते व इनके प्रति सहिष्णुता दिखाते हुए वे समान रूप से जीने को राजी होते हैं।

यह पुस्तक इस्लाम को लेकर इसी दिशा में किया गया एक तुच्छ प्रयास है। इस्लाम जो इसी ग्रह के एक अरब लोगों की आस्था है।

मैं इसे अपना प्रेम समर्पित करता हूं।

प्रेम अल्लाह की तरफ से है। घृणा शैतान की तरफ से।

\- हस्सान हतहूत

अध्याय-१

गॉड?

मैंने अपनी पोती से पूछा, 'क्या तुम गॉड को मानती हो?' वह तुरंत ही बोली, 'क्यों नहीं!' फिर थोड़ा रुककर कहती है, 'मां ऐसा ही कहती है!' तब मैं उसकी एक पुस्तक उठाकर उससे पूछता हूं, 'इसका लेखक कौन है?' वह फौरन ही लेखक का नाम पढ़ देती है। बातचीत जारी रहती है। मैं उससे कहता हूं 'मानो, मैं इस पुस्तक का पहला पृष्ठ फाड़ देता हूं। वह वाला पृष्ठ जिस पर लेखक का नाम लिखा है। फिर मैं कहता हूं कि यह पुस्तक इस लेखक ने लिखी है, या उस लेखक ने, या किसी ने नहीं लिखी। तब तुम क्या कहोगी?' उसने पूर्ण आत्मविश्वास से कहा, 'ऐसा हो ही नहीं सकता, असंभव'। इसके बाद की हमारी बातचीत तर्कसंगत ढंग से सिद्ध करती है कि जब एक पुस्तक किसी लेखक के होने का प्रमाण है तो यह सृष्टि भी इसके सृजक का प्रमाण ही है।

सरल और सहज, लेकिन यही एक मुस्लिम की सोच का आधार बिंदू है। शायद यही समानरूपी सोच थी कि पैगंबरों के कुलपिता पैगंबर हजरत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम - उन पर ईश्वर की ओर से सलामती हो) अल्लाह की खोज में लग गए। साथियों द्वारा निर्मित प्रतिमाओं रूपी झूठे भगवानों के पूजन से ऊबकर वे प्रकृति की ओर उन्मुख हुए व उसके विभिन्न रूपों में अल्लाह को खोजने लगे।

इस खोज में उन्होंने तारे, चांद और सूरज को ईश्वर समझा लेकिन पाया कि यह तो किसी के आदेश से उगते और अस्त होते हैं। तब उन्होंने उस आदेश देने वाले पर चिंतन शुरू किया। कुरआन इस बाबत बहुत रोचक शैली में कहता है-

और इस प्रकार हम इब्राहीम को आकाशों और धरती का राज्य दिखाने लगे (ताकि उसके ज्ञान का विस्तार हो) और इसलिए कि

उसे विश्वास हो।

फिर जब उसने सूर्य को चमकता हुआ देखा, तो कहाः "इसे मेरा रब ठहराते हो! यह तो बहुत बड़ा है।" फिर जब वह भी छुप गया, तो कहाः "ऐ मेरी कौम के लोगो! मैं विरक्त हूं, उनसे जिनको तुम साझी ठहराते हो। (६, ७५-७८)

अभी भी ईश्वर का विचार इतना लोकप्रिय नहीं है, जितना कोई कल्पना करता है। मैं यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि अध्ययन व चिंतन-मनन में रुचि रखने वाले अमेरिका व यूरोप के मेरे अनेक वैज्ञानिक साथी नास्तिक थे। ऐसे साथी जो पूर्व में कम्यूनिस्ट भी नहीं थे।

एक दौर में मैंने खुद नास्तिक होने के बहुत प्रयास किए। मैं द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 'वॉग' स्थित अपने देश की यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों के बीच था। अपने साथियों के साथ मैंने इस बाबत खूब प्रयास किए लेकिन अल्लाह के बगैर सृष्टि की कभी कल्पना नहीं कर सका।

ऐसे में एक दिन यह उलझन अपनी मौत खुद ही मर गई जब शाम को मैंने एक शब्द का अर्थ खोजने के लिए डिक्शनरी खोली और उसी समय एक विचार मेरे मन में कौंधा। मान लीजिए किसी ने मुझसे कहा कि तरतीब से जमे शब्दकोश के शब्द किसी प्रिंटर की दुकान में हुए धमाके का नतीजा हैं। इस धमाके में सारे शब्द चमकते हुए उड़े और उस तरतीब से जम गए, जैसे कि शब्दकोश में मौजूद हैं। जाहिर है मेरा दिमाग इसे स्वीकार नहीं कर सका!

तब विचार आया कि अगर वह परम रचयिता है, तो उससे महान कोई नहीं हो सकता, लेकिन वह किसी से कम है, उसकी भी सीमाएं हैं और असीम व अनंत होने में कोई उसका प्रतियोगी है तो वह परम रचयिता होने के काबिल नहीं है। परम रचयिता तो हर क्षेत्र में विशेष लक्षण रखता है और इसीलिए उसे अनंत व असीम भी कहा जाता है।

गणित विज्ञान में तो अनंत को एक वैज्ञानिक सत्य माना गया है और इसके लिए एक विशेष चिन्ह भी है। बेशक हम अनंत को भी पूरी तरह समझ नहीं सकते लेकिन यह तो स्वीकार कर सकते हैं कि कोई दिव्य शक्ति ही इस सृष्टि की रचयिता है क्योंकि हम तो

नष्ट होने वाले हैं, हमारी अपनी सीमाएं हैं। ऐसी सीमित क्षमताएं रखने वाला अनंत को समझ नहीं सकता। लेकिन अल्लाह तो हमें समझता है हालांकि हम अपनी सीमित क्षमताओं के चलते उसे नहीं समझ सकते। उसकी रचनाओं व उनमें छुपे संकेतों को देख हम उसे समझ सकते हैं।

अनंत को (गणितीय नियम के अनुसार भी) तीन या चार भागों में विभाजित नहीं कर सकते, सो एक से अधिक अल्लाह भी नहीं हो सकते। जैसे एक अल्लाह यहूदियों का, एक ईसाइयों का, एक मुसलमानों के लिए तो हिंदुओं का अलग और एक उनका भी जो उसे मानते ही नहीं हैं आदि। सार यह है कि अल्लाह एक है! यही एकेश्वरवाद इस्लामी अकीदे (आस्था) का आधार है, यही मुसलमानों की आस्था है।

हम अल्लाह के लिए सर्वनाम 'वह' इस्तेमाल करते हैं, इससे उसका लिंग पता नहीं चलता कि वह पुल्लिंग है या स्त्रीलिंग। गॉड ऐसे तमाम भेदों से इतर है। जहां तक इस शब्द के भाषाई उपयोग का प्रश्न है, वह भ्रम पैदा करने वाला है। यह उल्लेखनीय है कि उस असीम व अनंत सृष्टिकर्ता को कुछ भाषाएं (अंगरेजी सहित) एक शब्द में व्यक्त नहीं कर सकतीं। इसीलिए अंगरेजी में इसे व्यक्त करने, इंसानों द्वारा गढ़े गए भगवानों से अलग करने के लिए शब्द 'गॉड' का 'जी' केपिटल यानी बड़ा लिखना आवश्यक होता है।

इंसानों द्वारा गढ़े गए भगवानों के लिए 'जी' स्मॉल लिखा जाता है। अन्य भाषाओं में उस सर्वशक्तिमान रचयिता के लिए विशेष शब्द इस्तेमाल होते हैं। अरबी में इसे 'अल्लाह' कहा गया है। 'गॉड' इंग्लिश में, 'दियू' फ्रांसीसी, 'एदोनाई' हिब्रू। इनमें कोई भ्रम नहीं होना चाहिए। कई बार व्याख्यानों में श्रोताओं ने मुझसे पूछा 'अगर आप गॉड की इबादत करते हैं, तो अल्लाह कौन है?'

कई बार यह मामला इतना आसान नहीं होता। क्योंकि कुछ 'पढ़े-लिखे' जो 'बेहतर' समझ रखते हैं, उनके अनुसार मुसलमान गॉड की इबादत नहीं करते, उनका अपना गॉड है, जिसे वे 'अल्लाह' कहते हैं!

अध्याय-२

तो क्या?

मुस्लिम संप्रदाय

अल्लाह है,

कोई कहेगा, ‹तो क्या?'

क्या हम वाकई इसे लेकर चिंता करते हैं कि अल्लाह है या नहीं, या यह सिर्फ पढ़े-लिखे लोगों की एक जिज्ञासा, या यह सिर्फ धर्म शास्त्रियों व दर्शन शास्त्रियों को आकर्षित करने वाला एक मुद्दा मात्र है। अल्लाह के होने या न होने जैसे प्रश्न का क्या औचित्य है और मानव समाज पर इसके होने (या न होने) का क्या प्रभाव पड़ता है?

मान लीजिए, अल्लाह है, और वही इस सृष्टि का रचयिता भी है। उसके इस रचनाकर्म पर आधारित एक अध्ययन बताता है कि मानव संसार, सृष्टि की अन्य रचनाओं से अलग है क्योंकि हम अध्ययन करने में समर्थ हैं। परमाणु से लेकर आकाश गंगा तक सभी उसका आदेश मानते हैं, जो उन्हें नियंत्रित कर रहा है। हमारे अणुओं का गठन और रचना एक ही प्रकार से की गई है। हमारे शरीर की प्रक्रिया भी उसी नियम का पालन करती है।

जैसे-जैसे हमारे शरीर की क्रिया और जटिल होती जाती है और न्यूक्लिक एसिड (खुद से उत्पन्न अणु, जीवन का आधार तत्व) बनाना प्रारंभ कर देती है, तो रसायन शास्त्र का मेल जीव विज्ञान से होने लगता है, जो अपने-अपने नियमों का पालन करते हैं। इस तरह तो हम आश्चर्यजनक रूप से आला दर्जे के पशु हुए। जब मैं स्कूल में था तो हमें पढ़ाया जाता था कि इंसान जीव जगत का मुखिया है।

पर अभी तक तो हम किसी तरह अपने-आप को पशु रूप में नहीं पहचान पाए। हालांकि हम श्वसन, पाचन, चयापचयन, प्रतिरक्षण, संवेदन, आवागमन, प्रजनन आदि के जरिये जीव विज्ञान को पशुओं के साथ साझा करते ही हैं। परंतु हम जानते हैं कि यह हमारी जैविकी नहीं है, जिसने हमें प्राणी बनाया है। अभी तक जिन प्रजातियों का अध्ययन किया गया है, उनके बीच मात्र हम ऐसी प्रजाति के हैं, जो जीव शास्त्र से परे जाती है।

हम सुपर बायोलॉजिक प्राणी हैं, जिनके व्यवहार के लिए बायोलॉजी यानी जीव विज्ञान पूरी तरह सक्षम दिशा निर्देशक नहीं है। हमारे अंदर सहज ज्ञान व वासना है, जिसे पशु बहुत स्वाभाविक रूप से व्यक्त कर देते हैं। लेकिन हम मनुष्य इस प्रक्रिया को जटिल रूप से प्रस्तुत करते हैं, जो हमारी संतान पैदा करने की प्रक्रिया से अलग है। हमारा जीव विज्ञान पशुओं के जीव विज्ञान से बहुत मिलता है लेकिन यह सिर्फ विज्ञान तक सीमित नहीं है।

हम अन्य प्राणियों की तुलना में बहुत विकसित हो गए हैं। हमने आदर्श, सिद्धांत व अध्यात्म अपने अंदर पैदा कर लिए हैं। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि हम आध्यात्मिक प्राणी हैं, जो शरीर रूपी कंटेनर में बसे हैं। जो लोग सिर्फ अपनी इच्छाओं की पूर्ति तक सीमित हैं, उनके अंदर रूहानियत नहीं होने से वे पशु समान हो जाते हैं।

मानवों का अध्ययन करते समय हमने पाया कि रब ने हमारे अंदर चार महत्वपूर्ण खूबियां रखी हैं। वे हैं ज्ञान, भले और बुरे की पहचान, चयन की स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व।

ज्ञान। हम ज्ञान से प्रेम करते हैं और इसे ज्यादा से ज्यादा पाने की कोशिश में लगे रहते हैं। हमारा दिमाग निरीक्षण, कल्पना, तर्क बुद्धि, विश्लेषण, प्रयोग, परिणाम निकालने की क्षमता से लैस है। हम भूतकाल के साथ भविष्य को भी जानने के इच्छुक रहते हैं और आसपास लिखी प्रकृति की मुश्किल इबारतों को भी पढ़ने में लगे रहते हैं। इसके साथ ही हम इस ज्ञान को विभिन्न रूपों में सुरक्षित व व्यक्त करते रहते हैं।

भले और बुरे की पहचान। हम सदैव आशा करते हैं कि रहमानी काम आकर्षक होंगे और शैतानी कार्य अनाकर्षक। मानव जीवन का उलझाव, मस्तिष्क की विचारोत्तेजना और तमाम चीजों को

तर्क बुद्धि पर परखते रहने के बीच शैतान द्वारा दुविधाएं पैदा करना वास्तव में तस्वीर को और उलझा देते हैं। लेकिन भले और बुरे के बारे में जानकारी प्राचीनकाल से हमारे जीवन का अभिन्न अंग है।

चयन की स्वतंत्रता। रब ने हमारी प्रजाति को जो स्वायत्तता प्रदान की है, चयन की स्वतंत्रता उसी से मिली है। बेशक यह पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है। यह एक सीमा तक ही मिली है। इस सीमा के भीतर यह स्वतंत्रता मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अंग है।

उत्तरदायित्व। चयन की स्वतंत्रता मनुष्य के उत्तरदायित्व पर आधारित होती है। हमें इसका अहसास रहता है कि हम अपने कर्मों के प्रति उत्तरदायी हैं और उनके चयन की जिम्मेदारी हमारी है। यह केवल एक धर्म के लिए ही विशेष नहीं है। अगर आप किसी नास्तिक समाज में भी यातायात के नियम तोड़ेंगे तो जुर्माना भरना पड़ेगा। लेकिन धार्मिक मामला अलग है। धर्म के मान से आप पर तब तक कोई जवाबदारी नहीं बनती है, तब तक कि आप स्वतंत्र नहीं हैं, न ही आपको प्रलय के दिन हिसाब देना पड़ेगा।

धार्मिक व धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण से स्वतंत्रता मानव का बुनियादी अधिकार और इसका सारतत्व है। अल्लाह ने ऐसी प्रजाति बनाई जो अपने कर्मों के लिए जिम्मेदार है, ऐसी प्रजाति जिसका प्रतिनिधि लक्षण स्वतंत्रता है। हमारी सीमा, चयन, क्षमता से परे मामलात भाग्य पर आधारित हैं और बेशक मुष्य उनके प्रति उत्तरदायी नहीं ठहराए जा सकते।

इस तरह हम वे प्रजाति हैं, जो लगातार आत्म संवाद करने और निरंतर भले-बुरे का निर्णय करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं। अक्सर हम भावनाओं में बहकर भलाई और बुराई को समझ नहीं पाते। ऐसे में अपनी इच्छाशक्ति पर निर्भर रहकर स्वयं पर नियंत्रण नहीं रख पाते और बुरे कार्यों में लिप्त हो जाते हैं। इसके दुष्परिणाम भी भुगतने पड़ते हैं। मानव मन के इस आंतरिक द्वंद्व से पशुओं को मुक्ति दी गई है। वे वही करते हैं, जो उन्हें भाता है। प्राचीन ग्रंथ हमें बताते हैं कि फरिश्ते सिर्फ भले कार्य कर सकते हैं, उनमें बुरे कार्य करने की क्षमता ही नहीं होती।

इसलिए अन्य प्राणी बंधी-बंधाई प्रोग्रामिंग के तहत कार्य करते हैं, जबकि हम अपने चयन के आधार पर। यह मानवीयता का दुर्लभ गुण है। प्राचीन ग्रंथों से भी इसकी पुष्टि होती है। इनके अनुसार

अल्लाह ने फरिश्तों को आदेश दिया कि वे आदम को सज्दा करें, हालांकि आदम के मुकाबले फरिश्ते गुनाहों से पाक थे, लेकिन उन्होंने आदेश का पालन किया।

अब हम थोड़ा विषय से हटकर मानव और ब्रह्मांड की बात करेंगे। ब्रह्मांड के बारे में हम वैज्ञानिक रूप से जितना अध्ययन करेंगे, उतना ही पाएंगे कि हम समीकरणों पर आधारित ब्रह्मांड में रह रहे हैं, जो बहुत नाजुक तरीके से संतुलित किया हुआ है। थोड़ा सा भी असंतुलन ब्रह्मांड पर प्रलय लाने का कारण बन सकता है।

ऐसे ब्रह्मांड के निवासी हम, जब मानव समाज को देखते हैं तो पता चलता है कि किस तरह लोग बुरे कार्यों, गुनाहों में लिप्त जीवन व्यतीत कर रहे हैं। देख कर लगता है कि वे इसमें आनंद की अनुभूति भी कर रहे हैं। आखिर में उन्हें मौत आ जाएगी। इसके विपरीत कुछ लोग सत्य के लिए जूझते, न्याय के लिए लड़ते, अपने आदर्शों पर चलने की कठिनाइयां झेलते हुए मृत्यु को पहुंच जाते हैं। क्या यह काफी है? जीवन के इन दोनों तरीकों का अंत क्या मौत है? हमारी अंतरात्मा इसे स्वीकार नहीं करती।

ऐसे में इंसान के उत्तरदायित्व का क्या हुआ? अगर मौत ही इंसान की इस यात्रा का अंत है तो मानव जीवन नाजुक ढंग से संतुलित ब्रह्मांड के साथ संघर्षरत है। कुल मिलाकर इसलिए मृत्यु ही अंत नहीं हो सकता। मृत्यु के बाद शून्य नहीं है, इसके बाद दूसरा जीवन है, जिसमें संतुलन स्थापित कर कर्मों का हिसाब-किताब किया जाएगा। यही तो वह दिन (प्रलय) है, जिसके बारे में धार्मिक ग्रंथों में बताया गया है। इंसाफ करने का दिन। इस दिन अल्लाह लोगों के कर्मों का हिसाब करके उनको प्रतिफल देगा।

अल्लाह ने हमें स्वायत्तता देकर उत्तरदायित्वों से बांध दिया। हम संपूर्ण नहीं हैं, न ही हम से ऐसी अपेक्षा की गई है। सिर्फ यह चाहा गया है कि कठिनाइयों व सांसारिक आकर्षणों का सामना करते समय हम अपने सामर्थ्य के अनुसार सर्वोत्तम कर्म करें। कई बार हमारे कर्म पूरी तरह गलतियों से पाक-साफ नहीं हो सकते। हम परिश्रमी हैं और हमारा जीवन सतत संघर्ष है।

ऐसे में यह तर्कसंगत ही है कि अल्लाह हमारी उद्यमशीलता का प्रशंसक है, हमारे सतत परिश्रम को सराहना के साथ वह अपनी इस अद्भुत रचना को प्रेम करता है। निश्चित ही उसे यह पसंद

आएगा कि चयन के लिए दी गई छूट के बावजूद हम अपने उत्तरदायित्व वाले टेस्ट में सफल रहें। इसे करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम अल्लाह को अंतिम न्यायकर्ता व शासक के रूप में सदैव याद रखें। हमारे लिए क्या भला और क्या बुरा है, यह उसने पहले ही बता दिया है। हमें यह भी याद रखना है कि प्रलय का दिन अवश्यंभावी है, वही दिन जब हमें हिसाब देना होगा।

यह सब बताने के लिए मानव परिवार से चुनिंदा लोगों का चयन किया। उनसे अपनी शैली में (सीधी वार्ता, लिखित वर्णन, अवतरण या फरिश्ते के जरिये) संपर्क कर उन्हें अपने साथी मानवों तक यह आकाशीय संदेश पहुंचाने का काम दिया। यह संदेश कि अल्लाह और सिर्फ अल्लाह की इबादत करो, भलाई के काम करो और शैतानी कामों से बचो और हमेशा याद रखो कि अवश्यंभावी प्रलय के दिन उसके समक्ष उपस्थित होकर अपने किए-धरे का हिसाब देना है। पैगंबरों के सिलसिले का उद्देश्य ही यह संदेश पहुंचाना था।

अब तक के इतिहास में अनेक पैगंबर व संदेशवाहक आ चुके हैं। पैगंबरों के इस लंबे सिलसिले में अल्लाह ने कुछ के नाम आकाशीय पुस्तकों में दिए, कुछ को पुस्तकें दीं और कुछ को चमत्कार दिखाने की शक्ति दी। इनमें तीन महत्वपूर्ण पैगंबर इब्राहीमी सिलसिले से यहूदी, ईसाई व इस्लाम धर्मों में हुए।

यह तीनों हजरत इब्राहीम (अ.) के वंश से हैं- हजरत मुहम्मद (सल्ल.) हजरत इस्माईल (अ.) के परिवार से, हजरत मूसा (अ.) व ईसा (अ.) इस्हाक के परिवार से हैं। (हजरत इस्माईल (अ.) व हजरत इस्हाक (अ.) हजरत इब्राहीम (अ.) के बेटे थे।)

इस समय यह स्पष्ट करना मुनासिब होगा कि यहूदियों के अनुसार उनके धर्म के बाद अब पैगंबरों के आने का सिलसिला खत्म हो चुका है। उनके लिए हजरत ईसा (अ.) मसीहा नहीं हैं, न ही मां मैरी पवित्र नारी हैं, जिसका दावा उन्होंने किया था। वे मसीहा की प्रतीक्षा कर रहे हैं और ईसाइयत को आकाशीय धर्म मानने से इंकार करते हैं।

इसी तरह ईसाइयों के लिए ईसाइयत के बाद पैगंबरों का सिलसिला बंद हो चुका है, हालांकि वे यहूदियत को आकाशीय धर्म (यहूदियों द्वारा इसके प्रत्युत्तर की उम्मीद के बिना) मानते हैं। दूसरी ओर मुसलमान, यहूदी और ईसाई दोनों धर्मों को दैवीय धर्म मानते हैं,

इस हकीकत को जानने के बावजूद कि न तो यहूदी, न ही ईसाई धर्मावलंबी इस्लाम को आकाशीय धर्म मानते हैं।

वे हजरत मुहम्मद (सल्ल.) को अल्लाह का पैगंबर मानने से भी इंकार करते हैं। इधर मुसलमान हजरत मूसा (अ.) व हजरत ईसा (अ.) को अल्लाह का पैगंबर और उन पर अवतरित हुई पुस्तकों का भी आदर करते हैं। उनसे पहले अवतरित हुए पैगंबरों को भी वे मानते हैं। यह उनकी आस्था का अवश्यंभावी भाग है। इस्लाम की किताब कुरआन के हर शब्द पर विश्वास करना हर मुसलमान के लिए जरूरी है।

वे पढ़ते हैं- उसने तुम्हारे लिए वही धर्म निर्धारित किया जिसकी ताकीद उसने नूह को की थी। और वह (जीवंत आदेश) जिसकी प्रकाशना हमने तुम्हारी ओर की है और वह जिसकी ताकीद इब्राहीम और मूसा और ईसा को की थी, यह है कि "धर्म को कायम करो और उसके विषय में अलग-अलग न हो जाओ।" कुरआन (४२, १३)

इससे पहले कि हम आगे बढ़ें कुरआन के बारे में एक संक्षिप्त परिचय गैर मुस्लिम पाठकों की सहायता करेगा। मुसलमानों की आस्था के अनुसार आसमानी किताब कुरआन शब्दशः अल्लाह ने अवतरित की है। फरिश्तों में सर्वश्रेष्ठ फरिश्ता जिब्राईल (अ.) के माध्यम से यह पैगंबरे-इस्लाम हजरत मुहम्मद (सल्ल.) पर अवतरित की गई। लगभग न्यू टेस्टामेंट के बराबर यह आसमानी किताब एक ही बार में पूरी अवतरित नहीं हुई है। विभिन्न विषयों, मुद्दों या घटनाओं पर यह छोटे-छोटे हिस्सों में अवतरित की गई। २३ साल की अवधि में इसका अवतरण पूरा हुआ।

जब भी हजरत मुहम्मद (सल्ल.) पर कुरआन का कोई हिस्सा अवतरित होता और वे इसे अपने अनुयायियों को बताना चाहते तो इसे स्पष्ट करते कि कुरआन के शब्द कहां से शुरू हो रहे हैं। शुरुआत करते समय वे कहते 'अल्लाह कहता है' और आखिर में कहते 'अल्लाह सच कहता है।' नई आयतें फौरन ही लोग याद कर लेते, साथ ही उस समय उपलब्ध सामग्री पर उन्हें लिखा भी जाता।

कुरआन का अवतरण पूर्ण हो जाने के बाद हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने इसे क्रमबद्ध (कालक्रम अनुसार नहीं बल्कि दैवीय निर्देशों के अनुसार) कराया। तभी से यह अपनी मूल भाषा

(अरबी) में अक्षरशः वैसा ही सुरक्षित है। आकाशीय ग्रंथ के रूप में कुरआन अद्भुत रूप से आश्चर्यजनक है। एक बार अनुदित हो जाने के बाद उसे कुरआन नहीं कहा जा सकता। यह अनुवाद या सार या टिप्पणी होता है। इसमें मनुष्य के प्रयास शामिल रहते हैं। वे अल्लाह के मूल शब्द नहीं होते।

कुरआन अरबी भाषा में है और इसे अति उत्कृष्ट साहित्यिक आश्चर्य माना जाता है। हजरत मुहम्मद के समय में कुरआन ने अरबों को चुनौती दी थी कि वे उसकी नकल में कुछ बनाकर दिखा दें, लेकिन वे न कर सकेबल्कि अपनी साहित्यिक व भाषाई क्षमताओं पर गर्व करने के बावजूद उनके मन में कुरआन के प्रति आदर भाव रहा। इस्लाम के कुछ बदतरीन दुश्मन कुरआन के कुछ हिस्से सुनकर ही इस्लाम ले आए।

अध्याय-३

इस्लाम और अन्य समुदाय

कुरआन के अनुसार सृष्टिकर्ता द्वारा हर व्यक्ति को नस्ल, उत्पत्ति और संप्रदाय से इतर पूरी तरह इंसान बनाया है। हमने आदम की संतान को श्रेष्ठता प्रदान की और उन्हें थल और जल में सवारी दी और अच्छी-पाक चीजों की उन्हें रोजी दी और अपने पैदा किए हुए बहुत-से प्राणियों की अपेक्षा उन्हें श्रेष्ठता प्रदान की। कुरआन (१७, ७०)

इस्लाम पूरे मानव जगत को एक परिवार के रूप में देखता है। ऐ लोगो! अपने रब का डर रखो, जिसने तुमको एक जीव से पैदा किया और उसी जाति का उसके लिए जोड़ा पैदा किया और उन दोनों से बहुत-से पुरुष और स्त्रियां फैला दीं। कुरआन (०४, ०१) इसमें सभी को धार्मिक स्वतंत्रता के साथ समान मानवाधिकार दिए गए हैं। इस्लाम में 'अन्य समुदायों' के अधिकार पूरी तरह सुरक्षित रखे गए हैं। यह कोई बहुत अलग हट के धर्म नहीं है और न ही किसी पुरोहित या अन्य व्यक्ति को अधिकार दिए गए हैं कि वे अल्लाह की कृपा और क्षमा करने के अधिकारों की सीमा तय करे। न ही उन्हें यह अधिकार दिए गए हैं कि वे अल्लाह की ओर से किसी को इनाम या सजा दे। सारे कर्मों का न्यायकर्ता सिर्फ अल्लाह है। कहोः फिर तुम्हें अपने रब की ओर लौटकर जाना है। उस समय वह तुम्हें बता देगा जिसमें परस्पर तुम्हारा मतभेद और झगड़ा था। कुरआन (०६-१६४)

जिनके लिए धार्मिक पुस्तकें उतरीं

(यहूदी और क्रिश्चियंस)

मानव समाज में यहूदी और क्रिश्चियंस मुसलमानों के ज्यादा

नजदीक हैं। उन्हें 'अह्ले-किताब' (वे समुदाय जिनके पास आकाशीय पुस्तकें हैं) कहा गया है। ये एकेश्वरवादी हैं और इनके पैगंबरों पर अल्लाह की किताबें अवतरित हुई हैं। ये पैगंबरों के सिलसिले को भी साझा करते हैं और हमारे कई यहूदी व ईसाई मित्र यह जानकर आश्चर्यचकित रह गए कि बिबलिकल पैगंबर ही इस्लामी पैगंबर भी हैं। तीनों धर्मों के नैतिक नियम भी समान हैं। कुरआन कहता है:

कहो: "हम ईमान लाए अल्लाह पर और उस चीज पर जो हमारी ओर उतरी और जो इब्राहीम और इस्माईल और इस्हाक और याकूब और उनकी संतान की ओर उतरी, और जो मूसा और ईसा को मिली, और जो सभी नबियों को उनके रब की ओर से प्रदान की गई। हम उनमें से किसी को उस संबंध से, जो उनमें पाया जाता है, पृथक नहीं करते और हम केवल उसी के आज्ञाकारी हैं।" (०२, १३६)

शब्द 'इस्लाम' का शाब्दिक अर्थ 'अल्लाह की इच्छा के आगे संपूर्ण समर्पण है।'

'अह्ले-किताब' समुदायों द्वारा दिया जाने वाला भोजन (अगर वह हराम वस्तुओं यानी शराब व सुअर के मांस जैसी वस्तुओं से न बना हो) ग्रहण करने की मुसलमानों को इजाजत दी गई है। साथ ही वे भी अपना भोजन उन्हें दे सकते हैं- "आज तुम्हारे लिए अच्छी स्वच्छ चीजें हलाल कर दी गईं और जिन्हें किताब दी गई, उनका भोजन भी तुम्हारे लिए हलाल है और तुम्हारा भोजन उनके लिए हलाल है।" कुरआन (०५-०५) इससे भी बढ़कर यह कि मुसलमान पुरुष, यहूदी या ईसाई औरतों के साथ एक बहुत ही आंतरिक व पवित्र बंधन यानी वैवाहिक बंधन में बंध सकते हैं। "और शरीफ और स्वतंत्र ईमान वाली स्त्रियां भी, और वे शरीफ और स्वतंत्र स्त्रियां भी जो तुमसे पहले के किताब वालों में से हों, जबकि तुम उनका हक (मेहर) देकर उन्हें निकाह में लाओ। न तो यह काम स्वच्छंद काम तृप्ति के लिए हो और न चोरी-छिपे याराना करने को।

कुरआन (०५-०५) ऐसी स्थिति में यह अन्याय तथा कुरआन के निर्देशों के भी विपरीत होगा यदि मुस्लिम पति अपनी इन पत्नियों पर इस्लाम कबूल करने का दबाव डालें। "धर्म के विषय में कोई जबर्दस्ती नहीं" (०२, २५६)। इस्लाम के अनुसार ऐसे पतियों का

कर्तव्य यह है कि वे अपनी इन पत्नियों का उनके धर्मों के आधार पर इबादत करना सुनिश्चित करें।

अह्ले-किताब के लिए विधिमान्य तर्क है कि किसी इस्लामी राज्य में 'उनके अपने अधिकार व कर्तव्य हैं।' वे राज्य द्वारा समान रूप से सामाजिक सुरक्षा व अन्य लाभ प्राप्त करने के पात्र हैं। उनके साथ पक्षपात करने या घृणा प्रकट करने के विरुद्ध मुसलमानों को चेताया गया है। पैगंबर हजरत मुहम्मद कहते हैं 'जो कोई अह्ले-किताब को कष्ट पहुंचाएगा, वह मुझे स्वयं को कष्ट पहुंचाएगा'।

वास्तव में अपनी स्थापना के समय से ही इस्लामी समाज एक बहुलवादी समाज था। पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने मदीना आकर शरण लेने के साथ ही प्रथम इस्लामी राज्य स्थापित करने के लिए विभिन्न समुदायों के साथ एक संधि की, जिसमें धार्मिक स्वतंत्रता और समानाधिकार व कर्तव्य पालन सुनिश्चित किए गए थे। इस संधि में यहूदी भी शामिल थे।

इस्लाम एक अनन्य धर्म नहीं है। यह 'अरबी' या 'पूर्वी' यानी पूरब का धर्म नहीं है, जैसा कि कई लोग इसे बताने की कोशिश करते हैं। बल्कि यह तमाम इंसानों को संबोधित कर वैश्विक आमंत्रण देता है। 'अह्ले-किताब' को भी कि इस्लाम स्वीकार न करने के बावजूद उन्हें दुश्मन या नास्तिक समझने की जरूरत नहीं है। वास्तव में तो शब्द 'विधर्मी' यूरोपियन मूल का है, यह धर्मयुद्ध के समय ईसाइयों द्वारा मुस्लिमों के लिए इस्तेमाल किया गया था।

अच्छाई जहां कहीं भी हो, इस्लाम ने सदैव उसे प्रोत्साहित किया है। यह सब एक जैसे नहीं हैं। किताब वालों में कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो सीधे मार्ग पर हैं और रात की घड़ियों में अल्लाह की आयतें करते हैं और वे सज्दा करते रहने वाले हैं। कुरआन (०३-११३) कोई भी व्यक्ति विशेष या समूह अल्लाह की कृपा पर अपना अधिकार होने का दावा नहीं कर सकता और न ही इससे दूसरों को वंचित करने का। निस्संदेह, ईमान वाले और जो यहूदी हुए और ईसाई और साबिई, जो भी अल्लाह और अंतिम दिन पर ईमान लाया और अच्छा कर्म किया तो ऐसे लोगों का उनके अपने रब के पास (अच्छा) बदला है, उनको न तो कोई भय होगा और न वे शोकाकुल होंगे। कुरआन (०२-६२)

सैद्धांतिक मतभेद

इस्लाम, ईसाइयत व यहूदियत को लेकर पश्चिम की बड़ी आबादी में तरह-तरह की कहानियां फैली हुई हैं, जबकि हकीकत में इन तीनों धर्मों के बीच विपुल समानताएं हैं। ईसाइयत व यहूदियत की तुलना में इस्लाम इन दोनों मजहबों के ज्यादा निकट है। यह आकाशीय अवतरण के आधार पर दोनों धर्मों को मान्यता देता है, जबकि यहूदी न क्रिश्चिनियटी को मान्यता देते हैं, न ही इस्लाम को।

इस स्थिति में लगता है कि ‹ज्यूडो-क्रिश्चियन› जैसा शब्द न केवल भ्रमित करने वाला है, बल्कि यह राजनीतिक रूप से सिर्फ मुसलमानों को अलग करने के लिए गढ़ा गया है। हमारी वर्तमान सभ्यता को ज्यूडो-क्रिश्चियन-इस्लामिक कहना ज्यादा मुनासिब होगा। यह तीनों धर्म पैगंबर इब्राहीम (अ.) की परंपरा से आते हैं और इस्लामी दौर ने इस सभ्यता की नींव रखने का काम किया है। यह वही सभ्यता थी, जिसमें मुसलमान, यहूदी, ईसाई व अन्य समुदाय सहिष्णुता व आपसी सहयोग की भावना के साथ समान रूप से सुरक्षा व न्याय पाते थे।

इब्राहीमी सिलसिले के धर्मों और इस्लाम में अनेकों समानताएं हो सकती हैं लेकिन यह मुनासिब होगा कि इनके बीच मौजूद सैद्धांतिक मतभेदों की भी चर्चा कर ली जाए। इस चर्चाका उद्देश्य अन्य धर्मों को निशाना बनाने का नहीं, बल्कि इस विषय पर जानकारी देने का है। इसके जरिये यहूदी और ईसाई पाठकों को इस्लाम के साथ उनके संबंधों का पुनर्मूल्यांकन करने का मौका मिलेगा। बनिस्बत इसके कि वे जानकारी के अभाव में उपजी गलतफहमियों को निरंतर ढोते रहें, जिससे उनके बीच का द्वेष और बढ़े।

इन मतभेदों की प्रसिद्धि के साथ भी मुसलमान अल्लाह को स्वीकारते व उसके समक्ष खुद को प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार अपनी तमाम विशेषताओं में अल्लाह अजर-अमर, शाश्वत, अनंत व अपने तमाम प्रकटीकरण में विशिष्ट है। उसे किसी रूप में प्रस्तुत करने या सीमित करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती तथा उसके लिए सदा सम्मानजनक भाषा इस्तेमाल की जाती है।

इसलिए मुसलमानों को (बाइबल में) यह पढ़कर आश्चर्य ही होगा

कि गॉड ने गॉर्डन ऑफ ईडन में चहलकदमी की, या उसने फरिश्तों को बनाया और उनसे आदम की बाबत कहा, ‹देखो, यह मनुष्य हम जैसा होने वाला है›, या उसने (बाढ़ के बाद) अपने कर्म पर यह कहकर पश्चाताप किया, ‹मैं चाहता हूं कि मैंने यह न किया हो›, या यह कि गॉड ने छह दिनों तक काम कर सातवें दिन आराम किया, या किसी ने गॉड के साथ कुश्ती लड़ी और लगभग उसको परास्त ही कर दिया।

अल्लाह के द्वारा भेजे गए पैगंबरों और दैवीय संदेश वाहकों के बाबत मुसलमानों का विश्वास है कि अपना संदेश आमजन तक पहुंचाने और एक आदर्श प्रस्तुत करने के लिए इनका चयन अल्लाह करता है। जब कभी मानव समाज एकेश्वरवाद से भटक कर बहुदेववाद, मूर्ति पूजा की ओर उन्मुख होता है या नैतिक व चारित्रिक पतन की ओर अग्रसर होता है, उसके सुधार के लिए पैगंबरों या दैवीय संदेश वाहकों को भेजा जाता है।

वे मानव संपूर्णता के आदर्श उदाहरण होते हैं। यह सोच कि अल्लाह के भेजे गए पैगंबर उसकी आज्ञा के विरुद्ध गंभीर कुकृत्यों में लिप्त हो सकते हैं मुसलमानों के लिए स्वीकार्य नहीं हैं। परंतु बाइबल में उन्हें धोखाधड़ी या गंभीर अपराध करते (जैसे याकूब का अपने भाई के प्रति दुर्भावना रखना या कई अन्य पैगंबरों द्वारा शराब के नशे में कौटुंबिक व्याभिचार में लिप्त होकर बेटियों के साथ संबंध बनाना) प्रस्तुत किया गया है। यह इस्लामी शिक्षाओं के एकदम विपरीत है। पैगंबरों के ऐसे चित्रण की बाबत मुसलमानों की स्पष्ट सोच है कि यह दैवीय ग्रंथों में मानवीय हस्तक्षेप का नतीजा हैं।

यहूदी

मुसलमान कई बार यहूदियों को अपना भाई कहते हैं, क्योंकि इब्राहीम (अ.) अपने बेटे इस्माइल (अ.) के माध्यम से पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के पूर्वज हैं तथा इस्राईल (याकूब) और उसकी संतानें इस्हाक (अ.) के माध्यम से। जैसा कि सर्वविदित है इब्राहीम (अ.) की पत्नी सारा वृद्ध होने तक निःसंतान थीं। सारा ने बाद में इस्हाक (अ.) को जन्म दिया, लेकिन उससे पहले इब्राहीम (अ.) ने हगर से विवाह कर लिया, जिससे इस्माईल (अ.) का जन्म हुआ। कुरआन के अनुसार इब्राहीम (अ.) की परीक्षा लेने और अल्लाह की योजना पूरी करने के लिए उन्हें इस्माईल (अ.)

की बलि देने के आदेश दिए गए। वह स्थान जो इब्राहीम (अ.) ने बलि देने के लिए चुना, सदियों बाद सऊदी अरब के पवित्र शहर ‹मक्का› के रूप में विकसित हुआ, जहां अंततोगत्वा पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने जन्म लिया। इसी तरह इब्राहीम (अ.) ने हगर को इसी क्षेत्र में ईश्वरीय आदेश पर अपने मासूम बच्चे के साथ छोड़ दिया था।

जब उनके पास खाने-पीने की वस्तुएं समाप्त हो गईं और बच्चा भूख-प्यास से बिलबिलाने लगा तो हगर पानी के तलाश में इधर-उधर दौड़ने लगीं। तब बच्चे की एड़ियों से जलस्रोत फूट निकला, जिसे ‹जमजम› कहते हैं। इसी स्थान के आसपास हजरत इब्राहीम (अ.) ने अपने बेटे हजरत इस्माईल (अ.) के साथ एक अल्लाह की इबादत करने के लिए दुनिया की प्रथम मस्जिद के रूप में ‹काबा› का निर्माण किया। सारी दुनिया के मुसलमान हर साल यहीं ‹हज› जैसा पवित्र कर्तव्य अदा करते हैं। अल्लाह की मर्जी से सारा, रजोनिवृत्ति के बाद गर्भवती हुईं और इस्हाक (अ.) को जन्म दिया। याकूब (अ.) के पिता इस्हाक (अ.) का नाम बाद में बदलकर इस्राईल (अ.) कर दिया गया। बारह बच्चों का पिता इस्राईल (अ.)।

मुसलमान किसी हद तक नाराज हों शायद यह जानकर कि यहूदियों व ईसाइयों का बड़ा वर्ग इस्माईल (अ.) को इब्राहीम (अ.) की वैध संतान नहीं मानता। बाइबल पर आधारित पुस्तकों में हगर को इब्राहीम (अ.) की पत्नी बताने के साथ सारा की सहायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है (जेनेसिस १६-३)। मेरे (लेखक के) पास उपलब्ध ‹किंग जेम्स वर्जन›[१] की शब्दावली में तो इस्माईल (अ.) का नाम पूरी तरह गायब ही है। उनके बारे में खोजने के लिए मुझे शब्द इब्राहीम (अ.) का ही उपयोग करना पड़ा। टाइम एंड अगैन जेनेसिस (१६-१६, १७-२३, २५, २६, २१-११) में भी इस्माईल (अ.) को इब्राहीम (अ.) का पुत्र ही बताया गया है, जिससे पिता-पुत्र के इस रिश्ते का अस्वीकार करना असंभव है।

इसके अलावा इस्राईल के बेटों की मां से संबंधित खोज करने पर 'जेनेसिस' हमें बताती है कि इस्राईल ने अपनी रिश्ते की दो बहनों रशेल और लीह के साथ उनकी दो सहायिकाओं जिल्पाह और बिल्हाह के साथ विवाह किया था। इन चारों से इस्राईल के बारह बच्चे हुए। अभी तक तो किसी ने इस कारण इस्राईल के बच्चे कम होने का दावा नहीं किया कि उनकी मांएं सहायिकाएं थीं! क्या यह

इस्माईल के प्रति दोहरा रवैया अपनाने जैसा नहीं है?

जेनेसिस (२२-२) में इस बाबत अल्लाह ने इब्राहीम (अ.) से कहा, 'अपना पुत्र लो, तुम्हारा पुत्र इस्हाक (अ.) जिससे तुम बहुत प्रेम करते हो। इसे तुम मोरिया की धरती पर ले जाओ। वहां एक पहाड़ पर ले जाकर, जो मैं तुम्हें बताऊंगा, अग्नि में इसकी बलि दे देना।' मुस्लिम सोचते हैं कि इसमें इस्हाक (अ.) का नाम जान-बूझकर रखा गया है। उस समय केवल इस्हाक (अ.) ही इब्राहीम (अ.) की संतान नहीं थे, बल्कि (जेनेसिस १७, २४-२६ के अनुसार) वे तो इस्माईल (अ.) से १३ साल छोटे थे और जब उनके पिता इब्राहीम (अ.) की मौत हुई तब दोनों पुत्र जिंदा थे।

इब्राहीम (अ.) का परीक्षा में सफल होना, अल्लाह के प्रति उनका पूर्ण समर्पण और रब के हुक्म पर अपने इकलौते पुत्र इस्माईल (अ.) की बलि पर तैयार होने को मुसलमान हर साल समारोहपूर्वक हज के रूप में मनाते हैं। उनके लिए इस्माईल (अ.) और इस्हाक (अ.) दोनों समान रूप से अल्लाह के पैगंबर और सम्माननीय हैं।

कुरआन में कोई ५० स्थानों पर यहूदियों या इस्राईल (अ.) की संतानों का वर्णन मिलता है। इसके अलावा हजरत मूसा (अ.) का १३७ मर्तबा व तोराह का वर्णन १८ बार किया गया है। उन पर प्रशंसा के फूल बरसाए गए हैं, साथ ही कहीं-कहीं आरोप लगाने के साथ डांट-फटकार भी की गई है। इसके उदाहरणः

ऐ इजराईल की संतान! याद करो मेरे उस अनुग्रह को जो मैंने तुम पर किया था और इसे भी कि मैंने तुम्हें सारे संसार पर श्रेष्ठता प्रदान की थी। और डरो उस दिन से जब न कोई किसी की ओर से कुछ तावान भरेगा और न किसी की ओर कोई सिफारिश ही कबूल की जाएगी और न किसी की ओर से कोई फिदया (अर्थदंड) लिया जाएगा और न वे सहायता ही पा सकेंगे।

और याद करो जब हमने तुम्हें फिरऔनियों से छुटकारा दिलाया जो तुम्हें अत्यंत बुरी यातना देते थे, तुम्हारे बेटों को मार डालते थे और तुम्हारी स्त्रियों को जीवित रहने देते थे, और इसमें तुम्हारे रब की ओर से बड़ी परीक्षा थी। याद करो जब हमने तुम्हें सागर में अलग-अलग चौड़े रास्ते से ले जाकर छुटकारा दिया और फिरऔनियों को तुम्हारी आंखों के सामने डुबो दिया। और याद करो जब हमने मूसा को ४० रातों का वादा ठहराया तो उसके पीछे तुम

बछड़े को अपना देवता बना बैठे, तुम अत्याचारी थे। फिर इसके पश्चात भी हमने तुम्हें क्षमा किया, ताकि तुम कृतज्ञता दिखलाओ। (कुरआन २, ४७-५२)

और हमने इस्राईल की संतान को अच्छा, सम्मानित ठिकाना दिया और उन्हें अच्छी आजीविका प्रदान की। फिर उन्होंने उस समय विभेद किया, जबकि ज्ञान उनके पास आ चुका था। निश्चय ही तुम्हारा रब कयामत के दिन उनके बीच उस चीज का फैसला कर देगा, जिसमें वे विभेद करते रहे हैं। (कुरआन १०, ९३)

उल्लेखनीय है कि जहां भी कुरआन ने यहूदियों को लताड़ लगाई है, वास्तव में वह इसलिए है कि कुरआन ने उन्हें अपने धर्म से विमुख होते पाया (बाइबल में भी कई स्थानों पर यहूदियों को अल्लाह की बात न मानने वाले कहा गया है। देखें २ किंग्स १७, ७-२३)। हालांकि कुरआन आम यहूदियों, किसी विशेष धार्मिक समूह या नस्ल को निशाना नहीं बनाता।

असल में कुरआन इस सत्य की चर्चा करता है कि मूर्ति पूजकों व विधर्मियों के दौर में यहूदी लंबे समय तक एकेश्वरवादी रहे। ईसाइयत व इस्लाम के आगमन के बाद एकेश्वरवाद पर यहूदियों का यह एकाधिकार खत्म हो गया, साथ ही इस विचार का भी कि वे अल्लाह की चयनित विशेष नस्ल हैं। कम से कम मुस्लिम व ईसाई तो यही सोचते हैं।

इस्लाम किसी विशिष्ठ नस्ल के चयन के सिद्धांत का अनुमोदन नहीं करता। कुरआन में अल्लाह तआला ने कहा हैः ऐ लोगो, हमने तुम्हें एक पुरुष और एक स्त्री से पैदा किया और तुम्हें बिरादरियों और कबीलों का रूप दिया, ताकि तुम एक-दूसरे को पहचानो। वास्तव में अल्लाह के यहां तुममें सबसे अधिक प्रतिष्ठित वह है, जो तुममें सबसे अधिक डर रखता है। (कुरआन ४९, १३)

लोग भले या बुरे अपने कर्मों के आधार पर हो सकते हैं, न कि किसी विशेष पारिवारिक नस्ल से जुड़े होने के आधार पर। कुरआन में अल्लाह ने हजरत इब्राहीम (अ.) से जो वादे किए हैं, उनमें अनेक स्थानों पर कहा गया हैः

और याद करो जब इब्राहीम की उसके रब ने कुछ बातों में परीक्षा ली तो उसने उनको पूरा कर दिखाया। उसने कहाः "मैं तुझे सारे

इंसानों का पेशवा बनाने वाला हूं।" उसने निवेदन कियाः "और मेरी संतान में भी।" उसने कहाः "जालिम मेरे इस वादे के अंतर्गत नहीं आ सकते।" (कुरआन ०२, १२४)

अरबों व यहूदियों के बीच फिलिस्तीन को लेकर चल रहा संघर्ष एक दूरस्थ वचन को अत्यधिक महत्व देने से उपजा है, जो बाइबल में अल्लाह द्वारा इब्राहीम को दिया गया। 'और मैं तुझको, और तेरे पश्चात तेरे वंश को भी, यह सारा कनान देश, जिसमें तू परदेशी होकर रहता है, इस रीति दूंगा कि वह युग-युग उनकी निज भूमि रहेगी, और मैं उनका परमेश्वर रहूंगा।' (जेनेसिस १७, ८)। इस विकराल समस्या के मूल में यहूदियों का यह आग्रह है कि मात्र वे ही 'इब्राहीम के वंशज' हैं।

इसके आधार पर अधिकांश यहूदी मानते हैं कि केवल यहूदी ही फिलिस्तीन में रहने के अधिकारी हैं। जबकि एक सदी पहले इस धरती पर फिलिस्तीनी मुसलमान व ईसाई मुख्य रूप से आबाद थे और अल्पसंख्यक यहूदियों के साथ शांतिपूर्वक रहते थे। बाद में वर्तमान इजराइल की स्थापना करने वाले जायोनिस्ट द्वारा बहुसंख्यक फिलिस्तीनियों को उनका घर छोड़ने पर मजबूर किया गया।[२] इसके अलावा इस्राईल (अ.) की वे संतानें जिन्होंने ईसाई या इस्लाम धर्म अपना लिया, वे स्वयंमेव ही इजराइली 'लॉ ऑफ रिटर्न' के अनुसार फिलिस्तीनी धरा से बाहर हो गए, हालांकि वे इस्राईल (अ.) के वैध वंशज थे। (जैसे इस्हाक (अ.) के बेटे व इब्राहीम (अ.) के पोते पैगंबर याकूब, या इब्राहीम (अ.) का प्रथम पुत्र इस्माईल (अ.))। न तो ये वैध वंशज न ही फिलिस्तीनी ईसाई व मुस्लिम खुद को बाहरी मानते हैं, जिनके समक्ष या तो बतौर दूसरे दर्जे के नागरिक फिलिस्तीन में रहने या सदियों पुरानी अपनी धरती छोड़ देने जैसे विकल्प रखे गए।

नेताओं के ऐसे बयान इन फिलिस्तीनियों के गले मुश्किल से ही उतरते हैं, जैसा गोल्डा मायर ने कहा- 'फिलिस्तीनियों जैसी कोई चीज नहीं है, उनका कोई वजूद नहीं है,'[३] या ज्यूइश नेशनल फंड के पूर्व प्रमुख जोसेफ वैज ने कहा- 'हमारे बीच यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि इस देश में दोनों समुदायों के लिए कोई स्थान नहीं है।'[४]

मुसलमान फिलिस्तीनी समस्या को दो धर्मों के बीच युद्ध के रूप में नहीं देखते हैं। उनके अनुसार यह दो समूहों के बीच का टकराव

है, जिनके अपने-अपने तर्क और उद्देश्य हैं। इब्राहीमी सिलसिले के तीनों धर्मों के अनुसार इस समस्या का शांतिपूर्ण हल निकालने के लिए सद्प्रयास की जरूरत है। एक शांतिपूर्ण व दीर्घकालिक निदान के लिए न्याय व पारदर्शिता की आवश्यकता होती है। एक बलशाली व एक कमजोर के बीच किसी भी तरह का समझौता दीर्घकालिक नहीं हो सकता। ऐसे समझौतों पर एक विशिष्ट मानसिकता हावी नहीं होना चाहिए, इसे समझने के लिए दूरदृष्टा सत्ता चाहिए।

हमारा मानना है कि इब्राहीमी सिलसिले के तीन धर्मों से जुड़ी इस धरती को शांति व मेल मिलाप का स्थल होना चाहिए, न कि भेदभाव व अशांति का। तीनों को अपनी सहनशीलता और एक अल्लाह को मानने जैसे सारतत्वों का आपसी एकता के साथ उत्सव मनाना चाहिए, न कि मतभेदों को स्थान देना चाहिए। अगर आपसी समझ व धार्मिक सोच के सिलसिले में सभी पक्ष अपने दिलो-दिमाग खुले रखें तो ही अल्लाह की आवाज को सुन सकते हैं।

ऐतिहासिक रूप से मुसलमानों व यहूदियों के संबंध बनते-बिगड़ते रहे हैं लेकिन इसलिए नहीं कि इस्लाम यहूदी धर्म की आस्था से शत्रुता रखता था। दोनों के बीच टकराव के तर्कसंगत कारण होते थे, जो परिस्थितियों पर आधारित थे। हालांकि इस कारण हम यह दावा नहीं कर सकते कि मुसलमानों का इतिहास सदैव इस्लामी शिक्षाओं को प्रस्तुत करने वाला रहा। खासकर तानाशाहों के दौर में यहूदी व ईसाइयों को कष्ट झेलने पड़े, लेकिन यही मुसलमानों के साथ भी हुआ और वे भी सदैव प्रताड़ित किए जाते रहे।

क्रिश्चियन यूरोप में होलोकॉस्ट सहित यहूदियों को जिस तरह सदियों कष्ट भोगना पड़े, वैसी प्रताड़ना उन्हें मुस्लिम जगत में कभी भी नहीं सहनी पड़ी। ईसाइयत ने ही यहूदियों को 'किलर्स ऑफ गॉड' ठहराकर एक के बाद एक अनेक बार उनका संहार किया। यहां तक कि जब उनकी शत्रुता मुसलमानों से होती तो यूरोप हमेशा यहूदियों को उसमें शामिल कर नुकसान पहुंचाता।

यूरोप में हुए प्रथम क्रूसेड (धर्मयुद्ध) के दौरान हजारों यहूदी मारे गए। इस बारे में ऐसे भ्रामक तर्कों का सहारा लिया गयाः 'पूरब में अल्लाह के दुश्मनों से लड़ने के लिए हमने खासी तैयारियां की हैं और हमारी हर आंख हमारे बदतरीन दुश्मन यहूदी पर टिकी है।

सबसे पहले उन्हीं से निपटना है।"[५]

१४९२ में फर्डीनेंड व इजाबेला द्वारा स्पैन के मुसलमानों को परास्त करने के बाद यहूदियों को वहां से निकाल दिया गया। पहले किए गए वादों से मुकरते हुए वहां मुसलमानों व यहूदियों के धर्म पालन पर रोक लगा दी गई। अगर वे कैथोलिक धर्म नहीं अपनाएं तो उनके लिए मृत्यु दंड या देश निकाला की सजाएं निश्चित की गईं। ऐसे में कई यहूदियों ने तुर्की जाना पसंद किया, जहां इस्लामी खिलाफत (शासन) थी।

सुल्तान ने फर्डीनेंड व इजाबेला का मजाक उड़ाते हुए इन शरणार्थियों का यह कहकर स्वागत किया, 'उन्होंने अपना साम्राज्य दरिद्र कर मेरी सल्तनत को धनवान कर दिया।' स्पैन में मुस्लिम हुकूमत के दौरान यहूदियों ने वहां की संस्कृति को खासा समृद्ध किया। इनमें सबसे प्रसिद्ध उदाहरण महान मैमोनिडस का हो सकता है। वह कोरडोवा के इस्लामी दर्शन शास्त्री इब्ने रुश्द का शिष्य था। बाद में वह मिस्र पहुंचकर सुल्तान सलाहुद्दीन (धर्मयुद्ध से प्रसिद्ध) का निजी चिकित्सक बना।

इजराइली स्कॉलर, इतिहासविद् और पूर्व विदेश सचिव श्री एब्बा ईबन ने अपनी पुस्तक 'माय प्यूपिल',[६] (जिसे टीवी सीरियल के तौर पर भी प्रस्तुत किया जा चुका है) में लिखा है कि यहूदियों के पूरे इतिहास में उन्हें ईमानदारी से दो ही मौके मिले हैं।

एक मुस्लिम स्पैन में और दूसरा इस समय संयुक्त राज्य अमेरिका में। इस्लामी देशों में यहूदी नागरिक सदियों से सुरक्षित रहते हुए फलफूल रहे हैं। आज भी कई इस्लामी देशों में यहूदी नागरिकों की अच्छी-खासी तादाद बसती है। पीड़ादायक फिलिस्तीनी समस्या के बावजूद वे अपने हमवतन मुस्लिम व ईसाई नागरिकों के साथ भयमुक्त जीवन जी रहे हैं।

ईसाई

और इस किताब में मरियम की चर्चा करो, जबकि वह अपने घर वालों से अलग होकर एक पूर्वी स्थान पर चली गई। फिर उसने उनसे पर्दा कर लिया। तब हमने उसके पास अपनी रूह (फरिश्ते) को भेजा और वह उसके सामने एक पूर्ण मनुष्य के रूप में प्रकट हुआ। वह बोल उठीः "मैं तुझसे बचने के लिए रहमान की पनाह

मांगती हूं यदि तू (अल्लाह का) डर रखने वाला है (तो यहां से हट जाएगा)।»

उसने कहाः «मैं तो केवल तेरे रब का भेजा हुआ हूं, ताकि तुझे नेकी और भलाई में बढ़ा हुआ लड़का दूं।» वह बोलीः «मेरे कहां से लड़का होगा, जबकि मुझे किसी आदमी ने छुआ तक नहीं और न मैं कोई बदचलन हूं?» उसने कहाः «ऐसा ही होगा। तेरे रब ने कहा है कि ‹यह मेरे लिए सहज है।› और ऐसा इसलिए होगा (ताकि हम तुझे) और ताकि हम उसे लोगों के लिए एक निशानी बनाएं और अपनी ओर से एक दयालुता। यह तो एक ऐसी बात है जिसका निर्णय हो चुका है।» फिर उसे उस (बच्चे) का गर्भ रह गया और वह उसे लिए हुए एक दूर के स्थान पर अलग चली गई।

अंततः प्रसव पीड़ा उसे एक खजूर के तने के पास ले आई। वह कहने लगीः «क्या ही अच्छा होता कि मैं इससे पहले ही मर जाती और भूली-बिसरी हो गई होती! उस समय उसे उसके नीचे से पुकाराः "शोकाकुल न हो। तेरे रब ने तेरे नीचे एक स्रोत प्रवाहित कर रखा है। तू खजूर के उस वृक्ष के तने को पकड़कर अपनी ओर हिला। तेरे ऊपर ताजा पकी-पकी खजूरें टपक पड़ेंगी।

अतः तू खा और पी और आंखें ठंडी कर। फिर यदि तू किसी आदमी को देखे तो कह देनाः 'मैंने तो रहमान के लिए रोजे की मन्नत मानी है, इसलिए मैं आज किसी मनुष्य से न बोलूंगी'।" फिर वह उस बच्चे को लिए हुए अपनी कौम के लोगों के पास आई। वे बोलेः "ऐ मरियम, तूने तो बड़ा ही आश्चर्य का काम कर डाला! ऐ हारून की बहन! न तो तेरा बाप ही कोई बुरा आदमी था और न तेरी मां ही बदचलन थी।"

तब उसने उस (बच्चे) की ओर संकेत किया। वे कहने लगेः "हम उससे कैसे बात करें, जो पालने में पड़ा हुआ एक बच्चा है?" उसने कहाः "मैं अल्लाह का बंदा हूं। उसने मुझे किताब दी और मुझे नबी बनाया। और मुझे बरकत वाला किया जहां भी मैं रहूं, और मुझे नमाज और जकात की ताकीद की, जब तक कि मैं जीवित रहूं। और अपनी मां का हक अदा करने वाला बनाया और उसने मुझे सरकश और बेनसीब नहीं बनाया। सलाम है मुझ पर जिस दिन कि मैं पैदा हुआ और जिस दिन कि मैं मरूं और जिस दिन कि जीवित करके उठाया जाऊं! कुरआन (१९, १६-३३)

यीशु का किस्सा कुरआन में इसी तरह बयान किया गया है। इस पवित्र ग्रंथ में 'जीसस' के तौर पर २५ बार, 'मसीहा' के तौर पर ११ बार और 'मां मरियम (मैरी) के इकलौते पुत्र' के रूप में उनका २ बार जिक्र आया है। मां मरियम का नाम ३४ मर्तबा आया और 'अपनी पवित्रता की सुरक्षा करने वाली' के रूप में २ बार उनका उल्लेख किया गया है।

मुसलमान भौंचक्के व आश्चर्यचकित रह जाते हैं जब वे पाते हैं कि जाने-माने अध्येता, विशेषज्ञ और इन सबसे दुखदायक ईसाई पुरोहित इस्लाम और मुसलमानों को हजरत ईसा अ. (यीशु) के शत्रुओं की तरह प्रस्तुत करते हैं। इसके विपरीत नहीं जानने वाले या कम जानकारी रखने वाले ईसाइयों को जब हमने बताया कि सैद्धांतिक मतभेदों के बावजूद मुसलमान ईसा मसीह व मरीयम का कितना सम्मान करते हैं, तो वे भी अचरज करने लगे।

इस्लाम में हजरत ईसा (अ.) व मां मरियम का कितना सम्मान है, यह बताने के लिए चंद उदाहरण ही काफी होंगे।

और याद करो जब फरिश्तों ने कहाः "ऐ मरियम! अल्लाह तुझे अपने एक कलिमे (बात) की शुभ-सूचना देता है, जिसका नाम मसीह, मरियम का बेटा, ईसा होगा। वह दुनिया और आखिरत में आबरू वाला होगा और अल्लाह के निकटवर्ती लोगों में से होगा। कुरआन (०३, ४५)

मरियम का बेटा मसीह-ईसा इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कि अल्लाह का रसूल है और उसका एक 'कलिमा' है, जिसे उसने मरियम की ओर भेजा था। और उसकी ओर से एक रूह है...। कुरआन (०४, १७१)

और वह नारी जिसने अपनी सतीत्व की रक्षा की थी, हमने उसके भीतर रूह फूंकी और उसे और उसके बेटे को सारे संसार के लिए एक निशानी बना दिया। कुरआन (२१, ९१)

यहूदी और ईसाइयों के बीच जीसस के बारे में उनके दृष्टिकोण को लेकर एक प्रमुख और स्पष्ट अंतर दिखता है, जिनके बारे में मुस्लिमों की आस्था है कि वे अपने यहूदी साथियों के बीच अल्लाह के सच्चे पैगंबर थे। कुरआन कहता है-

ऐ ईमान लाने वालो! अल्लाह के सहायक बनो, जैसा कि मरियम के बेटे ईसा ने हवारियों (साथियों) से कहा थाः "कौन है अल्लाह की ओर (बुलाने में) मेरे सहायक?" हवारियों ने कहाः "हम हैं अल्लाह के सहायक।" फिर इस्राईल की संतान में से एक गिरोह ईमान ले आया और एक गिरोह ने इंकार किया। कुरआन (६१, १४)

वे लोग जो जीसस का इंकार करते तथा उनकी माता पर अनर्गल आरोप लगाते हैं, कुरआन में उन्हें कई बार लताड़ लगाई गई है-

और उनके इंकार के कारण और मरियम के खिलाफ ऐसी बात कहने पर जो एक बड़ा लांछन था, और उनके इस कथन के कारण कि हमने मरियम के बेटे ईसा मसीह, अल्लाह के रसूल, को कत्ल कर डाला। हालांकि न तो इन्होंने उसे कत्ल किया और न उसे सूली पर चढ़ाया, बल्कि मामला उनके लिए संदिग्ध हो गया। इसके संबंध में जिन लोगों को आना-जाना था, निश्चय ही वे इस मामले में संदेह में थे।

अटकल पर चलने के अतिरिक्त उनके पास कोई ज्ञान न था। निश्चय ही उन्होंने उसे (ईसा को) कत्ल नहीं किया, बल्कि उसे अल्लाह ने अपनी ओर उठा लिया। और अल्लाह अत्यंत प्रभुत्वशाली, तत्वदर्शी है। कुरआन (४, १५६-५८) इसीलिए इस्लाम यहूदियों को हजरत ईसा (अ.) की हत्या के पाप से पूरी तरह मुक्त करता है। ईसाइयों के एक गुट का इस बारे में यह दृष्टिकोण भी प्रचलित है कि उस दिन हजरत ईसा (अ.) के स्थान पर किसी और (संभवतयः जूडास एस्केरियॉट) को सूली पर चढ़ाया गया। हजरत ईसा (अ.) को स्वीकार न करने पर कुरआन ने यहूदियों को लताड़ लगाई है-

और हमने मूसा को किताब दी थी, और उसके पश्चात आगे-पीछे निरंतर रसूल भेजते रहे और मरियम के बेटे ईसा को खुली-खुली निशानियां प्रदान कीं और पवित्र-आत्मा के द्वारा उसे शक्ति प्रदान की तो यही तो हुआ कि जब भी कोई रसूल तुम्हारे पास वह कुछ लेकर आया जो तुम्हारे जी को पसंद न था, तो तुम अकड़ बैठे, तो एक गिरोह को तुमने झुठलाया और एक गिरोह को कत्ल करते रहे? कुरआन (०२, ८७)

मुसलमानों का विश्वास है कि हजरत ईसा (अ.) अल्लाह के हुक्म पर चल रहे थे, कुरआन ने इसे यूं कहा है-

जब अल्लाह कहेगाः "ऐ मरियम के बेटे ईसा! मेरे उस अनुग्रह को याद करो जो तुम पर और तुम्हारी मां पर हुआ है। जब मैंने पवित्र आत्मा से तुम्हें शक्ति प्रदान की, तुम पालने में भी लोगों से बातें करते थे और बड़ी अवस्था को पहुंचकर भी। और याद करो, जबकि मैंने तुम्हें किताब और हिकमत और तोरात और इंजील[७] की शिक्षा दी थी।

और याद करो जब तुम मेरे आदेश से मिट्टी से पक्षी का प्रारूपण करते थे, फिर उसमें फूंक मारते थे, तो वह मेरे आदेश से उड़ने वाली बन जाती थी। और तुम मेरे आदेश से अंधे और कोढ़ी को अच्छा कर देते थे और जबकि तुम मेरे आदेश से मुर्दों को जीवित निकाल खड़ा करते थे। और याद करो जबकि मैंने तुमसे इजराइलियों को रोके रखा, जबकि तुम उनके पास खुली-खुली निशानियां लेकर पहुंचते थे, तो उनमें से जो इंकार करने वाले थे उन्होंने कहाः "यह तो बस खुला जादू है।" कुरआन (०५, ११०)

हजरत ईसा के सच्चे अनुयायियों की भी प्रशंसा की गई है, जिनमें प्रथम दौर के ईसाइयों के साथ हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के दौर वाले भी शामिल हैं।

फिर उनके पीछे उन्हीं के पद-चिन्हों पर हमने अपने दूसरे रसूलों को भेजा और हमने उनके पीछे मरियम के बेटे ईसा को भेजा और उसे इंजील प्रदान की और जिन लोगों ने उसका अनुसरण किया, उनके दिलों में हमने करुणा और दया रख दी। कुरआन (५७, २७)

और ईमान लाने वालों के लिए मित्रता में सबसे निकट उन लोगों को पाओगे, जिन्होंने कहा कि 'हम नसारा हैं।' यह इस कारण है कि उनमें बहुत-से धर्म ज्ञाता और संसार त्यागी संत पाए जाते हैं। और इस कारण कि वे अहंकार नहीं करते। कुरआन (०५, ८२)

आइए, अब हम मुसलमानों व ईसाइयों के बीच के कुछ मतभेदों पर विचार करते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण यह कि मुसलमान भी मां मरियम को पवित्र व कुआंरी मानते हैं। उनके अनुसार अल्लाह ने जीसस को बिना बाप के पैदा किया है, न किमा मरियम से मिलकर। मुसलमानों की आस्था है कि अल्लाह इस तरह के शारीरिक चित्रांकन से ऊपर है, जैसा कि कुरआन में कहा गया- वह शाश्वत और अपने आप में संपूर्ण है- कहोः "वह अल्लाह यकता है, अल्लाह निरपेक्ष व सर्वाधार है, न वह जनिता है और न जन्य,

और न कोई उसका समकक्ष है। कुरआन (११२, ०१-०४) यह आस्था रखना कि हजरत ईसा (अ.), अल्लाह के शारीरिक रूप से बेटे हैं, इस्लाम के खिलाफ है (हालांकि अलंकारिक भाषा में यह कहना स्वीकार्य है कि हम सब अल्लाह की संतान हैं)।

इस्लाम को यह सिद्धांत भी अस्वीकार्य है कि मदर मैरी, गॉड की माता हैं। मां मैरी और जीसस को बतौर इंसान इस्लाम में विपुल सम्मान दिया गया है और वास्तव में जीसस बिना पिता के पैदा हुए थे। इस्लामी सिद्धांतों के अनुसार वे 'गॉड द्वारा उत्पन्न संतान' हैं। कुरआन कहता है- निस्संदेह अल्लाह की दृष्टि में ईसा की मिसाल आदम जैसी है कि उसे मिट्टी से बनाया गया, फिर उससे कहाः "हो जा", तो वह हो जाता है। कुरआन (०३, ५९)

कुरआन के अनुसार जीसस ने कभी अपनी या अपनी मां की बाबत यह दावा नहीं किया कि वे पैगंबर हैं- और याद करो जब अल्लाह कहेगाः "ऐ मरियम के बेटे ईसा! क्या तुमने लोगों से कहा था कि अल्लाह के अतिरिक्त दो और पूज्य मुझे और मेरी मां को बना लो?" वह कहेगाः "महिमावान है तू! मुझसे यह नहीं हो सकता कि मैं वह बात कहूं, जिसका मुझे कोई हक नहीं है। यदि मैंने यह कहा होता तो मुझे मालूम ही होता। तू जानता है, जो कुछ मेरे मन में है। परंतु मैं नहीं जानता जो कुछ तेरे मन में है। निश्चय ही तू ही छिपी बातों का भली-भांति जानने वाला है। मैंने उनसे उसके सिवा और कुछ नहीं कहा, जिसका तूने मुझे आदेश दिया था, कि यह कि 'अल्लाह की बंदगी करो, जो मेरा भी रब है और तुम्हारा भी रब है।'

और जब तक मैं उनमें रहा, उनकी खबर रखता था, फिर जब तूने मुझे उठा लिया तो फिर तू ही उनका निरीक्षक था। और तू हर चीज का साक्षी है। यदि तू उन्हें यातना दे तो वे तो तेरे बंदे ही हैं और यदि तू उन्हें क्षमा कर दे, तो निस्संदेह तू अत्यंत प्रभुत्वशाली, तत्वदर्शी है। कुरआन (०५, ११६-१८)

ऐसे मामलों में मुस्लिम हजरत ईसा के माध्यम से न्यू टेस्टामेंट की इन आयतों का जिक्र करते हैं- ईसा ने उससे कहा, "मुझे भला क्यों कहते हो? ईश्वर को छोड़ कोई भला नहीं।" (मार्क १०, १८)

न्यू टेस्टामेंट के अनुसार, जब जीसस क्रॉस पर थे तब उन्होंने प्रार्थना की 'एलोई-एलोई, लामा सबाखतानी?' इसका अर्थ है 'माय

गॉड, माय गॉड, तूने मुझे क्यों त्याग दिया है?' (मार्क १५, ३४) निश्चित ही वे अपने अलावा किसी और से चर्चा कर रहे थे।

ऐसे में संधि व तीन गॉड संबंधी विचारों के लिए इस्लाम में कोई स्थान ही नहीं है- ...तीन न कहो, बाज आ जाओ! यह तुम्हारे लिए अच्छा है, अल्लाह तो केवल अकेला पूज्य है। यह उसकी महानता के प्रतिकूल है कि उसका कोई बेटा हो। आकाशों और धरती में जो कुछ है, उसी का है... कुरआन (०४, १७१) यह मुसलमानों के गले नहीं उतरता कि अल्लाह की शाश्वत सत्ता तीन भागों में विभाजित की जा सकती है, या जीसस का देव रूप हो सकता है। हम समझते हैं कि जीसस ने कभी यह नहीं कहा कि 'एक ईश्वरीय सत्ता' में तीन दैवीय व्यक्तित्व शामिल हो सकते हैं।

उन्होंने तो सदैव अपने पूर्ववर्ती पैगंबरों की तरह एक अल्लाह (त्रयी कभी नहीं) की इबादत करने की शिक्षा ही दी। इसके अलावा ट्रिनिटी की अवधारणा से प्रारंभिक दौर के ईसाई अपरीचित थे। ऐतिहासिक रूप से सन् ३२५ ई. में सम्राट कॉंस्टेनटाइन के समय कांग्रेस ऑफ निकेया में इसके आदेश जारी कर रोमन साम्राज्य में लागू किया गया। द न्यू कैथोलिक इंसाइक्लोपीडिया[८] में दिया गया है- 'चौथी शताब्दी से पूर्व 'तीन लोगों में एक गॉड' वाला सूत्र न तो उस समय की क्रिश्चियन लाइफ में शामिल हुआ था, न ही यह उनकी आस्था से जुड़ा था।'

दोनों समुदायों में 'ओरिजिनल सिन' के विचार को लेकर भी मतभेद हैं। बाइबल के अनुसार, शैतान ने हव्वा को वर्जित फल खाने के लिए बहकाया। इस पर हव्वा ने आदम (अ.) को बहकायाजिसके बाद पाप किया गया। इसकी सजा बतौर उन्हें स्वर्ग से निर्वासित कर धरती पर भेज दिया गया।

इसमें हव्वा को प्रमुख रूप से इस अपराध का जिम्मेदार माना गया। 'फिर स्त्री से उसने कहा, मैं तेरी पीड़ा और तेरे गर्भवती होने के दुख को बहुत बढ़ाऊंगा, तू पीड़ित होकर बालक उत्पन्न करेगी और तेरी लालसा तेरे पति की ओर होगी, और वह तुझ पर प्रभुता करेगा।' (जेनेसिस ३, १६)। इस पर ईसाई मत है कि तमाम मानव इस पाप के भागीदार हैं और हर नवजात पाप लेकर पैदा होता है।

इस मामले में कुरआन कहता है कि शैतान ने आदम और हव्वा दोनों को बहकाया, दोनों ने पाप किया और उस पर पश्चाताप किया,

तब दोनों को माफी मिल गई। यही 'ओरिजनल सिन' का अंत है। फिर शैतान ने दोनों को बहकाया, ताकि उनकी शर्मगाहों को, जो उन दोनों से छुपी थीं, उन दोनों के सामने खोल दें। और उसने (इबलीस ने) कहाः "तुम्हारे रब ने तुम दोनों को जो इस वृक्ष से रोका है तो केवल इसलिए कि ऐसा न हो कि तुम कहीं फरिश्ते हो जाओ या कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें अमरता प्राप्त हो जाए।"

और उसने उन दोनों के आगे कस्में खाईं कि "निश्चय ही मैं तुम दोनों का हितैषी हूं।" कुरआन (०७, २०-२१) उनके पछतावे के बाद फिर आदम ने अपने रब से कुछ शब्द पा लिए, तो अल्लाह ने उसकी तौबा कबूल कर ली, निस्संदेह वही तौबा कबूल करने वाला, अत्यंत दयावान है। कुरआन (०२, ३७)।

आदम को पैगंबरी मिली और इंसान को धरती पर अल्लाह का नायब होने की सौगात मिली। इस पर शैतान ने इंसान का पीछा करने और उसे पापों में लिप्त करने की कसम खाई लेकिन अल्लाह ने वादा किया है कि जो लोग आकाशीय संदेशों से विमुख नहीं होंगे, उन्हें मार्गदर्शन दिया जाएगा तथा हमेशा शैतान की योजनाओं के बारे में सतर्क किया जाता रहेगा। हर इंसान पापों से मुक्त पैदा होता है। बाद में यह हमारा चयन होता है कि हम पापों में लिप्त हो जाते हैं। इस्लाम के अनुसार पाप कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो बच्चों को उनके अभिभावकों की ओर से विरासत में मिले।

इस मामले में इस्लाम व्यक्ति को अपने कर्मों का जवाबदार मानता है, जो कोई सीधा मार्ग अपनाए तो उसने अपने लिए ही सीधा मार्ग अपनाया और जो पथभ्रष्ट हुआ तो वह अपने ही बुरे के लिए भटका। और कोई भी बोझ उठाने वाला किसी दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा। और हम लोगों को यातना नहीं देते जब तक कोई रसूल न भेज दे।

कुरआन (१७, १५)। किसी के कर्मों का जवाबदार किसी अन्य को ठहराना इस्लाम में नहीं है और यह दावा कि जीसस या किसी और की जान इंसानी गुनाहों का प्रायश्चित करते हुए गई, स्वीकार्य नहीं है। पापों से मुक्त होकर अल्लाह की रजा पाने के लिए इस्लाम में गंभीर प्रायश्चित व नेक कर्मों की जरूरत होती है, न कि लहू बहाने की। अल्लाह की रहमत के साए में ही शैतान से मुक्ति मिलती है- और जिनका हाल यह है कि जब वे कोई खुला गुनाह कर बैठते

हैं या अपने-आप पर जुल्म करते हैं, तो तत्काल अल्लाह उन्हें याद आ जाता है और वे अपने गुनाहों की क्षमा चाहने लगते हैं, और अल्लाह के अतिरिक्त कौन है, जो गुनाहों को क्षमा कर सके? और जानते-बूझते वे अपने किए पर अड़े नहीं रहते। कुरआन (०३, १३५)

कोई गुनाह अल्लाह की रहमत से बड़ा नहीं है। कह दोः "ऐ मेरे बंदों, जिन्होंने अपने आप पर ज्यादती की है, अल्लाह की दयालुता से निराश न हों। निस्संदेह अल्लाह सारे ही गुनाहों को क्षमा कर देता है। निश्चय ही वह बड़ा क्षमाशील, अत्यंत दयावान है। कुरआन (३९, ५३)। पैगंबर मुहम्मद (सल्ल.) के अनुसार अल्लाह कहता है- 'तुम आदम की संतान, तुम जमीन पर गुनाह करके मेरी तरफ आते हो, फिर पछताते हो और मुझे पुकारते हो, मेरे साथ किसी को शरीक नहीं करते हो, तब मैं तुम्हारी तरफ बढ़ता हूं माफी के साथ।'

जीसस के लहू से प्रायश्चित करने और चयनित नस्ल में शामिल (गॉड की ओर से विशेष सुविधाओं) होने जैसे विचारों के बीच मुसलमानों को अल्लाह के क्षमाशील होने पर पूरा विश्वास है। इससे उनके भी क्षमाशील होने का पता चलता है। क्षमाशील होना, चाहे वह व्यक्तिगत हो, जातियों या राष्ट्रों के बीच, इस्लाम का मूल भाव है। यहां तक कि दो पक्षों के बीच जब कानून सजा सुना दे, तब भी क्षमाशीलता को महत्व दिया गया है- बुराई का बदला वैसी ही बुराई है किंतु जो क्षमा कर दे और सुधार करे तो उसका बदला अल्लाह के जिम्मे है... कुरआन (४२, ४०)

उन्हें चाहिए कि क्षमा कर दें और उनसे दरगुजर करें। क्या तुम यह नहीं चाहते कि अल्लाह तुम्हें क्षमा करे? कुरआन (२४, २२)

कोई भी व्यक्ति क्षमा याचना के लिए अल्लाह से सीधे कभी भी, कहीं भी मुखातिब हो सकता है। इसके लिए उसे किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है। हर व्यक्ति चाहे वह पुरुष हो या नारी, अपने रचयिता के साथ डायरेक्ट लाइन रखता है। जब कभी वे उसका रहम और क्षमा पाने के लिए रोते-गिड़गिड़ाते हैं, तो अल्लाह प्रत्युत्तर देता और क्षमा कर देता है।

अपने गुनाह स्वीकारने, कन्फेशन करने के लिए उसे किसी विशेष स्थल पर जाने की जरूरत नहीं है। 'जाओ मेरे बेटे, तुम्हें क्षमा दी

गई' जैसे शब्दों का इस्लाम में कोई स्थान नहीं है। क्षमाशीलता पर अल्लाह का एकाधिकार है और किसी को भी, कभी भी यह रोल अदा करने का अधिकार नहीं है। असल में तो इस्लाम में कोई पुरोहितवादी संस्था नहीं है। इसमें धार्मिक विद्वतजन हैं, पुरोहिताई नहीं है। इस आशा के साथ कि अल्लाह की कृपा अपार है, यह उस पर निर्भर करता है कि वह हमें प्रत्युत्तर दे (और वह निश्चित ही न्यायप्रिय है), हम पर कृपाशील रहे (और वह निश्चित ही कृपाशील है)।

अपनी सारी जिंदगी हम यही दुआ करते हैं कि वह हमें अपनी कृपा अपने न्याय से अधिक दे। हमारा पश्चाताप निश्छल और गंभीर होना चाहिए और अगर यह हमारे दिल में बसता है, तो हमारे कर्मों में भी दिखना चाहिए। यह विरोधाभासी होगा कि कोई मेरा बटवा चुरा ले और वापस करने से इंकार करते हुए बार-बार बल्कि लाखों बार कहे 'अल्लाह मुझे क्षमा करे।' जब भी तीसरा पक्ष शामिल हो, न्याय पहले कर देना चाहिए।

ये सैद्धांतिक मतभेद न तो मामूली हैं, न ही इनकी अनदेखी करनी चाहिए, लेकिन इन्हें लेकर लड़ना या एक-दूसरे से नफरत करना मूर्खता होगी। आस्था संबंधी मतभेदों से जुड़ी परिचर्चाएं, बहस-मुबाहिसे उच्चस्तरीय नैतिकता के साथ सभ्य ढंग से होनी चाहिए- और किताब वालों से बस उत्तम रीति से वाद-विवाद करो, रहे वे लोग जो उनमें जालिम हैं, उनकी बात दूसरी है, और कहो: "हम ईमान लाए उस चीज पर जो हमारी ओर अवतरित हुई और तुम्हारी ओर भी अवतरित हुई। और हमारा पूज्य और तुम्हारा पूज्य अकेला ही है और हम उसी के आज्ञाकारी हैं।" कुरआन (२९, ४६)।

ईसाइयों और मुसलमानों के दृष्टिकोणों में गंभीर मतभेदों के बावजूद इस्लाम इसकी तीव्र इच्छा रखता है कि दोनों के बीच मौजूद समानताओं के मद्देनजर दोनों पक्ष साथ मिल बैठने का आनंद उठाएं- कहो: "ऐ किताब वालो! आओ एक ऐसी बात की ओर जिसे हमारे और तुम्हारे बीच समान मान्यता प्राप्त है, यह कि हम अल्लाह के अतिरिक्त किसी की बंदगी न करें और न उसके साथ किसी चीज को साझी ठहराएं और न परस्पर हम में से कोई एक-दूसरे को अल्लाह से हटकर रब बनाए।" फिर यदि वे मुंह मोड़ें तो कह दो: "गवाह रहो, हम तो मुस्लिम हैं।" कुरआन (०३, ६४)।

इससे संबंध शांतिपूर्ण व मित्रवत होने चाहिए।

दोनों धर्मों के बीच स्थित सैद्धांतिक मतभेदों की चर्चा कर लेने के बाद यह उचित ही होगा कि यहां मुसलमानों व ईसाइयों के भौगोलिक-राजनीतिक इतिहास का संक्षिप्त जायजा ले लिया जाए। इस्लाम के आखिरी पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के समय विश्व में दो महाशक्तियां थीं। पूरब में पारसी साम्राज्य था और पश्चिम में रोमन। पारसी अग्निपूजक थे और रोमन ईसाई, सो स्वाभाविक रूप से मुसलमानों की सहानुभूति ईसाइयों के साथ थी। दोनों महाशक्तियों के बीच भयंकर युद्ध के दौर में उदय होते इस्लाम ने ईसाइयों की बुरी तरह हार देखी, लेकिन कुरआन ने भविष्यवाणी की (जो सच साबित हुई) कि यह परिदृश्य बदलेगा- रोमन निकटवर्ती क्षेत्रों में पराभूत हो गए। और वे अपने पराभव के पश्चात शीघ्र ही कुछ वर्षों में प्रभावी हो जाएंगे। हुक्म तो अल्लाह ही का है पहले भी और उसके बाद भी। और उस दिन ईमान वाले अल्लाह की सहायता से प्रसन्न होंगे। वह जिसकी चाहता है, सहायता करता है। वह अत्यंत प्रभुत्वशाली, दयावान है। <u>कुरआन (३०, ०२-०५)</u>।

सालों बाद इन दोनों महाशक्तियों के पार्श्व में इस्लाम अरब प्रायद्वीप में एक राज्य के साथ राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरा। दोनों शक्तियों ने इसे गंभीर खतरे के रूप में देखा और उसके खिलाफ अपनी क्लाइंट अरब प्रजातियों को भड़काना शुरू कर दिया। बाद में उन्होंने भारी-भरकम सशस्त्र सेना की मदद से अत्यंत उग्र युद्ध जैसा छेड़ दिया। अपने विरोधियों के मुकाबले इस्लामी सेना के संख्या और शस्त्र बल दोनों में कमजोर होने के बावजूद इस अवश्यंभावी हो चुके सैनिक टकराव का अंत अचरजकारी रहा।

पूरब में पारसी साम्राज्य का सूर्य अस्त होने लगा और कुल मिलाकर वहां के लगभग तमाम बाशिंदों ने इस्लाम ग्रहण कर लिया। पश्चिम में रोमन साम्राज्य सिकुड़ने लगा और एक शताब्दी से भी कम समय में एक बहुलवादी इस्लामी साम्राज्य लगभग आधे विश्व में फैल गया। यह लगातार फैलती जा रही इस्लामी सभ्यता का स्थान था, जो यूनानी बौद्धिक संपदा को चर्च के विध्वंस से संरक्षित करने का काम कर रहा था। इस सभ्यता ने ज्ञान के कई क्षेत्रों में काम आगे बढ़ाया। इनमें चिकित्सा, रसायन, भौतिक, ज्योतिष शास्त्र के साथ गणित (अलजेब्रा अरबी भाषा का

शब्द है और साइंस का आविष्कार मुसलमानों ने किया है), संगीत, दर्शन शास्त्र जैसे ज्ञान शामिल हैं। इनके साथ धर्म शास्त्र, अरबी साहित्य और भाषा शास्त्र के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किए गए। तमाम नस्लों व धर्मों से संबंध रखने वाले लोगों की इस सभ्यता के विकास में सहभागिता रही।

अपने अंधकारमय युग से बाहर आ रहे यूरोप को उस समय झटका लगा जब उसने देखा कि यह नवोदित सभ्यता मानव मस्तिष्क पर बिना कोई सैंसरशिप (धार्मिक या अन्य कोई) लगाए निरंतर आगे बढ़ रही है। अरबी विज्ञान की भाषा थी। उस समय की यूरोपियन यूनिवर्सिटीज में पढ़ाने के लिए मुस्लिम प्रोफेसर्स रखे जाते थे और कई सदियों तक इनमें मुस्लिम लेखकों की पुस्तकें पढ़ाई जाती रहीं। यूनानी दर्शन शास्त्रियों से यूरोप का परिचय अरबी अनुवादों के माध्यम से हुआ। बाद में जब छापाखाना (प्रिंटिंग प्रेस) वजूद में आया तो उस समय के ज्यादातर प्रकाशन अरबी से अनुदित होते थे।

जब मुस्लिम साम्राज्य कमजोर होने लगा तो यूरोप ने पलट वार किया। इसकी ऐतिहासिक उपलब्धि पूर्व में धर्मयुद्ध (क्रूसेड) तथा पश्चिम में फर्डिनेंड और इसाबेला की इस्लामी स्पैन पर विजय थी। उन्होंने चर्च में विश्वास न रखने वालों के विरुद्ध अभियान प्रारंभ कर स्पैन से मुसलमानों व यहूदियों का सफाया कर दिया। इस तरह उन दोनों ने एक नए विश्व की खोज का रास्ता साफ किया, विजेताओं को शासन के साथ राज्य की छत्र-छाया में दास प्रथा की स्थापना की।

धर्मयुद्ध सीधे-सीधे महत्वपूर्ण मुस्लिम स्थानों पर कब्जा करने के लिए था। उस समय तर्क यह दिया गया कि ईसाइयों का पवित्र स्थल येरूशलम मुसलमानों के कब्जे से आजाद कराना है। दो शताब्दियों से अधिक चले इस धर्मयुद्ध ने एक धार्मिक उन्माद को जन्म दिया, जो आज भी पाश्चात्य मस्तिष्क में मौजूद है। इसने कुछ हद तक पाश्चात्य संस्कृति को भी प्रभावित किया और यह सिलसिला जारी है। मुख्यधारा के वर्तमान ईसाई इस धर्मयुद्ध की आलोचना करते हैं। वे इसे उपनिवेशवादियों द्वारा छेड़े गए युद्ध से ज्यादा नहीं मानते हैं, जिसकी चपेट में ईसाइयत आ गई और बहुत से लज्जाजनक कृत्य इस दौरान हुए। इस तरह कि ईसाइयत खुद भी इस युद्ध का शिकार हुई।

शब्द 'क्रूसेड' (बतौर क्रिया और संज्ञा दोनों) एक अद्भुत शब्द की तरह भाषा में स्थापित होकर भावनात्मक रूप से गहरे तक उतर गया है। अनेक ईसाइयों, जिनमें पुरोहित व आमजन दोनों शामिल हैं, के साथ हम भी मानते हैं कि आत्म खोज व स्व-सम्मान के लिए क्रूसेड के बारे में ईसाइयत फिर से विचार मंथन करे, जैसा कि स्पैन से मुसलमानों के सफाये और जर्मन होलोकॉस्ट की बाबत पहले ही किया जा चुका है। क्रूसेड की सच्चाइयां सामने लाना नई वैश्विक व्यवस्था स्थापित करने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम हो सकता है। इससे दो विशाल मानव समूहों के बीच (प्रत्येक की संख्या १ अरब) पश्चाताप के द्वार खुल जाएंगे। हो सकता है इस क्रांतिकारी कदम से धर्मयुद्ध सरीखे छद्म धार्मिक आवरण के पीछे से होने वाले शैतानी हमले, जैसे बोस्निया या दुनिया में कहीं भी हुए, वे रुक जाएं।

मेरा इरादा धर्मयुद्ध के बारे में और अधिक चर्चा करने का नहीं है। इसके बजाय मैं कुछ ईसाई लेखकों के उद्धरण देना पसंद करूंगा। इनमें से एक धर्म योद्धा की रिपोर्ट है, जो प्रथम धर्मयुद्ध में येरूशलम पर हुए कब्जे का साक्षी है। १५ जुलाई, १०९९ की इस रिपोर्ट में वह कहता है- 'नंगी तलवारें लिए हमारे साथी पूरे शहर में दौड़ते रहे। उन्होंने किसी को नहीं छोड़ा, उनको भी नहीं जो दया की भीख मांग रहे थे। अगर तुम वहां होते तो तुम्हारे पैर टखनों तक रक्त में डूब गए होते। इससे आगे मैं क्या कहूंगा? उन (येरूशलमवासियों) में से किसी को जीवित रहने की आज्ञा नहीं थी। सैनिकों ने औरतों और बच्चों को भी नहीं छोड़ा। हमारे घोड़े घुटनों तक रक्त से सने हुए थे, नईं, लगाम तक। यह गॉड का तात्कालिक और अद्भुत न्याय था।'[९]

१२०२ में चौथा क्रूसेड वेनिस से प्रारंभ हुआ। रास्ते में ईसाइयों का क्षेत्र कांस्टैनटिनोपल पड़ा, जिसे धर्म योद्धाओं ने बुरी तरह तहस-नहस कर डाला। उन्होंने वहां ऐसी तबाही मचाई कि खुद पोप ने अपने धर्मयोद्धाओं को जमकर लताड़ लगाते हुए संदेश भेजा- 'वे तुम्हारे शत्रु नहीं बल्कि ईसाई ही थे, जिनके विरुद्ध तुमने तलवारें उठा लीं। यह येरूशलम नहीं था, जिस पर तुमने कब्जा किया बल्कि कांस्टैनटिनोपल था। यह स्वर्ग का वह पथ नहीं था, जो तुम्हारे मस्तिष्क पर छाया हुआ है, बल्कि यह तो धरती का पथ था। यह तुम्हारे लिए पुनीत नहीं है। तुमने विवाहिताओं, बेवाओं और नन्स तक के साथ हिंसा की। तुमने चर्चों के सुरक्षित शरण

स्थलों को क्षति पहुंचाई, पवित्र वस्तुएं चुराईं, संतों के अनगिनत चित्र और प्रतिमाएं खंडित कर दीं। यह बहुत ही आश्चर्यजनक है कि यूनानी चर्च को तुम्हारे कृत्यों में शैतान दिखा।'[१०] यह वह कुछ था जो धर्म योद्धाओं ने क्रिश्चियन कांस्टैनटिनोपल के साथ किया। कोई भी कल्पना कर सकता है कि मुस्लिम 'विधर्मियों' के साथ उन्होंने क्या किया होगा।

आधुनिक युग का यह संकेत अति महत्वपूर्ण हो सकता है कि मुसलमानों को लेकर ईसाई समुदाय का दृष्टिकोण बदल रहा है। इससे आशा उपज रही है कि यह मुसलमानों व ईसाइयों के बीच बेहतर समझ बनाने में महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। धर्मयुद्ध का प्रारंभिक उद्घोष करने वाले पोप अरबन २ (अरबन पवित्र के तौर पर प्रसिद्ध) ने जहां सन् १०९५ में मुसलमानों के बारे में लिखा- 'ईश्वरविहीन लोग, मूर्तिपूजक, यीशु के दुश्मन, कुत्ते, शाश्वत अग्नि में जलने वाले' इत्यादि।

उधर पोप पॉल ६ के अधीनस्थ इन्साइक्लिकल 'नोस्ट्रा ऐटेट' (१९६५) मुसलमानों को एक दूसरी दृष्टि से देखते हैं। वे लिखते हैं, 'मुसलमानों को भी चर्च सम्मान की दृष्टि से देखता है,' आगे यह भी स्पष्ट किया गया है कि मुसलमान एक अल्लाह की इबादत करते हैं, वही जो इब्राहीम (अ.) का भी पूज्य है। उनके साथ जुड़कर इस्लामी आस्था प्रसन्न है। वे अल्लाह की इबादत के साथ प्रार्थनाएं करते और दान देते हैं।

जीसस और उनकी अनब्याहता मां का सम्मान करते हैं तथा उन्हें अल्लाह का पैगंबर और संदेशवाहक मानते हैं।

यूरोपियन देशों के उप-निवेशवादी एजेंडे के कारण धर्मयुद्ध के बाद से ही यूरोप और मुसलमानों के संबंध खराब रहे हैं और प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से अनेक इस्लामी देश यूरोपियन उप-निवेशवादियों की गिरफ्त में हैं। एक लंबे संघर्ष के बाद उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता मिल पाई है लेकिन उपनिवेशवाद ने संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व में अब नव-उपनिवेशवाद का चोला बदल लिया है। यह सैन्य अधिकार प्राप्त करने के बजाय आर्थिक रूप से कब्जा कर रहा है।

1. प्रामाणिक किंग जेम्स वर्शन, ग्रेट ब्रिटेनः कोलिंस वर्ल्ड, १९७५।
2. इस बाबत जीवंत संस्मरण के लिए देखिए चॉसर की पुस्तक 'ब्लड ब्रदर्स' (ग्रांड रेपिड्सः चूजन (चयनित) बुक्स, १९८४)
3. संडे टाइम्स (लंदन) १५ जून १९६९। आर गरौडी की पुस्तक 'द केस ऑफ इजराईल' (शॉराउक इंटरनेशनल, लंदन से प्रकाशित, १९८३), पृ. ३७।
4. डावर (इस्राईल)। २९ सितंबर १९६७।
5. द परसूट ऑफ द मिलिनेयम, नॉर्मन कोह्न। बैम्बर गैसकोइन की 'द क्रिश्चियंस' में शामिल। (लंदन, जोनाथन कैप १९७७) पृ. ११३।
6. एब्बन अब्बा। 'माय प्यूपिल।' न्यूयॉर्कः बेहरमैन, १९६८।
7. इंजीलः मूल पुस्तक हजरत ईसा (अ.) पर अवतरित हुई, जो अब उपलब्ध नहीं है। इसके कुछ भाग 'गोस्पेल' (या न्यू टेस्टामेंट) में पाए जाते हैं। -संपादक।
8. न्यू कैथोलिक इंसाइक्लोपीडिया, एसवी। 'द हॉली ट्रिनिटी।'
9. कोह्न, नॉर्मन। द पर्स्यूट ऑफ द मिलेनियम। बैंबर गैस्कोइन द्वारा अपनी पुस्तक 'द क्रिश्चियंस' (लंदन- जोनाथन कैप, लंदन, १९७७) में उद्धृत किया गया, पृ. ११३।
10. बैंबर गैस्कोइन, 'द क्रिश्चियंस' लंदन- जोनाथन कैप, १९७७, ११९।

अध्याय-४

इस्लाम के स्तंभ

इस्लाम एक व्यापक धर्म है, जिसका पूर्णरूपेण अर्थ पश्चिमी देशों में प्रचलित शब्द ‹रिलीजन› द्वारा प्रकट नहीं हो सकता है। कारण कि यह धर्म मानव जीवन के तमाम पहलुओं पर प्रभावकारक है, चाहे वह व्यक्तिगत हों या सामुदायिक। अपने अनुयायियों को यह पूर्णरूपेण संबोधित करता है, जिसे शरीअत कहते हैं। शरीअत को तीन भागों में विभाजित किया गया है- इबादतें (पूजा-अर्चना), नैतिक विधान और विधिक व्यवस्था। इनमें कई प्रावधान स्वैच्छिक हैं। इन तीनों का आपस में गहरा संबंध है। जैसे कि सामान्य व्यक्ति के लिए जो नैतिक नियम प्रतिपादित किए गए हैं, वही सामुदायिक नैतिकता भी हो सकती है और नैतिकता का अस्तित्व कभी विधिक शून्य में नहीं होता, अर्थात नैतिकता के साथ विधिक प्रावधान जरूरी हैं। मानव का अंतःकरण और बाह्यकरण (कर्म और व्यवहार) दोनों को एकरूप होना चाहिए, न कि यह एक-दूसरे के विपरीत हों। इबादतों का तरीका ही व्यक्ति को तैयार करता है कि वह इस्लाम की सच्चाई को समझे। इससे कम हरेक चीज धोखा और जालसाजी ही मानी जाएगी।

शरीअत की सामान्य रूपरेखा

शरीअत के स्रोत

शरीअत का प्रथम उद्गम स्रोत कुरआन है, जो अल्लाह की शाब्दिक वाणी है। कुरआन में तमाम पहलुओं पर रोशनी डाली गई है, ऐसे सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं, जो प्रथम पंक्ति से शुरू होकर समुदाय को स्थापित करते हैं[११]। इसमें उच्चतर नैतिक आदर्शों के साथ उचित व अनुचित (वर्जित) को परिभाषित किया गया है। ये इबादत के सिद्धांतों और संपूर्ण विधिक प्रणाली का रूपांकन

करते हैं। इनमें पारिवारिक विधि, आर्थिक नियमावली, दंड विधान, सामाजिक व्यवहार, संधि, युद्ध और शांति के दौर की नैतिकता, शासन व प्रशासन की प्रकृति का उल्लेख है। (जो इस्लामी लोकतंत्र की पहली कड़ी से संबद्ध है।) इसके साथ ही शरीअत के प्रावधानों में मानवाधिकार, अन्य राष्ट्रों-धर्मों से संबंध, उत्तराधिकार, कर प्रणाली वगैरह के साथ मानव जीवन के हर पहलू पर रोशनी डाली गई है। कहा जा सकता है कि कुरआन ने मानव जीवन के किसी भी पहलू को अछूता नहीं रहने दिया है।

कुरआन शरीफ इस्लामी नियमावली का एक बुनियादी ढांचा प्रस्तुत करता है, जिसमें आस्था और इबादत, मामलात (आचार-व्यवहार) से संबंधी सिद्धांत दिए गए हैं। इनमें अपवादस्वरूप परिवर्तन के लिए सीमित लचीलापन रखा गया है। आपसी व्यवहार पर इस्लामिक न्याय शास्त्र में जड़ता नहीं दिखाई है, जिसके कारण न्याय शास्त्र की प्रगति हुई है। इसमें अनेक विचारधाराओं को सम्मिलित किया गया है जो यह सिद्ध करता है कि शरीअत निश्चल नहीं है और उबाऊ भी नहीं।

शरीअत का दूसरा स्रोत पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) की सुन्नत है। इसमें उनके आदेश, निषेधात्मक निर्देश, सुझाव और जो कार्य उन्होंने बहैसियत पैगंबर किए हैं, या जिनकी स्वीकृति दी है, वे हैं। इन्हें ही सुन्नत कहा जाता है। अनेक बार कुरआन का ध्येय सुन्नत से समझ में आता है। सुन्नत का विज्ञान सुदृढ़ रूप से बहुप्रामाणिक है। इसमें हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के कथनों के प्रामाणिकरण के लिए कड़ी मेहनत की गई है, जो ऐतिहासिक विज्ञान का अद्भुत उदाहरण है। इसमें संवाददाताओं की कड़ियां जांची गई हैं और विशेष तौर पर यह देखा गया है कि यह कुरआन के अनुकूल है या नहीं तथा यह वास्तविकता और सामान्य बुद्धि के विपरीत तो नहीं है। इस तरह सुन्नत के ज्ञान को सूक्ष्मता प्रदान की गई है।

शरीअत का तीसरा स्रोत वह है जो कुरआन या सुन्नत में विशिष्ट तौर पर स्थापित नहीं किया गया है। इसमें ऐसे आधुनिक मुद्दा से बहस की जाती है, जिनके बारे में कुरआन व सुन्नत से सीधे मार्गदर्शन नहीं प्राप्त हो पाता। इसे 'इज्तिहाद' (नवाचार) कहते हैं। इसके लिए धार्मिक, वैज्ञानिक, सांख्यिकी या सामाजिक स्थितियों के आधार पर नियम तय किए जाते हैं। इसमें इसका विशेष ध्यान

रखा जाता है कि ऐसे नियम कुरआन व सुन्नत के प्रतिकूल या शरीअत के उद्देश्यों के विरुद्ध तो नहीं हैं। इस तरह शरीअत में जड़ता नहीं है। इसमें मानव विविधता के बदलते स्वरूपों को साथ लेकर विधि का निर्माण किया गया है। न्याय शास्त्र को स्थापित करने के लिए इस्लामी आदर्शों को साथ में लिया है, जो पैगंबर साहब के निर्देशों और कुरआन के उसूलों व निर्देशों के मुताबिक हों।

शरीअत द्वारा अनेक मामलात में लचीलापन इख्तियार किया गया है। जैसे एक सिद्धांत यह है कि 'आवश्यकता पड़ने पर निषेधाज्ञा को भी रद्द किया जा सकता है।' उदाहरणार्थ सुअर का मांस खाना निषिद्ध है लेकिन मुसाफिर मरुस्थल में भटक गया और मरणासन्न स्थिति में पहुंच गया, सुअर के मांस के अलावा कोई खाद्य पदार्थ उपलब्ध नहीं हो तो वह इतना खा सकता है, जितना उसकी जान बचाने के लिए जरूरी हो। ऐसी और भी मिसालें मिल जाएंगी जहां बड़ी बुराई को छोड़कर छोटी बुराई को अपनाया जाना स्वीकार किया गया है। इस बाबत ध्येय वाक्य यह हैं कि 'जनउद्धार व्यक्तिगत उद्धार से ज्यादा महत्वपूर्ण है' और 'क्षति से बचाव किया जाना आवश्यक है।' सामान्य नियम यह है कि जिस कार्य में भी कुरआन व सुन्नत से टकराव न हो, वह स्वीकार्य है, 'जहां कहीं भी जन कल्याणकारी कार्य हों, वह अल्लाह के नियमानुसार हैं।'

शरीअत के लक्ष्य

शरीअत का सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य आमजन का कल्याण है, जो मौजूदा जीवन में तो हो ही, मरणोपरांत भी इसका लाभ उसे मिलता रहे। इसके लिए आवश्यकताओं का वर्गीकरण अति आवश्यकता, सामान्य आवश्यकता और ऐच्छिक आवश्यकता (जो जीवन में और आनंद भरती हैं) के रूप में किया गया है। इस तरह प्राथमिकता शरीअत के उन ५ अनिवार्य आदर्शों की है, जिनका मकसद मानव जीवन का संरक्षण और सुरक्षा है। यह आदर्श हैं (१) जीवन (२) मस्तिष्क (३) धर्म (४) मालिकी और कब्जा (५) संतति उत्पत्ति और संरक्षण। इन सभी को आगे जाकर विभिन्न शाखाओं व उप-शाखाओं में बांटा गया है, जिनमें सूक्ष्म विवरण भी दर्ज किया गया है। इनमें से प्रत्येक के बारे में समुचित नैतिक व विधिक नियम दिए गए हैं। इस गूढ विषय के विभिन्न बिंदुओं की गहराई में जाने के बजाय हम हर वर्ग से कुछ आवश्यक उदाहरणों की चर्चा करेंगे ताकि तस्वीर स्पष्ट हो सके।

जीवन की सुरक्षा व संरक्षण

इसमें जीवन का अधिकार और उसे यथावत रखने की आवश्यकता प्रतिपादित की गई है। इसमें नाहक हत्या करने की मनाही के साथ ही अपवाद भी दिए गए हैं जैसे कि धर्मयुद्ध या न्यायिक मृत्यु दंड। किसी बीमारी का इलाज करना, उससे बचने के उपाय, खानपान के नियम, स्वास्थ्य रक्षा, स्वच्छता और सफाई। व्यक्ति, सड़कों और वातावरण की सफाई भी इस्लामिक सेवाओं में शामिल हैं। हजरत मुहम्मद (सल्ल.) की सबसे प्रभावशाली शिक्षा यह है कि कोई बीमारी अल्लाह ने ऐसी नहीं दी है, जिसका इलाज पैदा नहीं किया हो। कुछ के उपचारों की जानकारी है और कुछ की नहीं है, जिसके लिए अनुसंधान और शोध करने की सलाह दी गई है। किसी रोग को फैलने से रोकने के लिए रोगी को अलग रखने के आदेश पैगंबर (सल्ल.) ने दिए हैं कि "जहां महामारी फैली हो, वहां से भागो मत और बाहर हो तो वहां मत जाओ।'

कृषि को प्रोत्साहन देने की भी अनुशंसा की गई है। पैगंबर मुहम्मद की शिक्षा में (१) अगर प्रलय का दिन आ जाए और तुम्हारे हाथ में एक पौधा हो तो जल्दी से उसे लगा दो, अगर तुम लगा सकते हो। (२) जो कोई फसल उगाए और उसे जो भी खाएगा, चाहे वह चिड़िया हो, जानवर हो या चोर ही क्यों न हो तो उगाने वाले को पुण्य मिलेगा। (३) जंग के दौरान वृक्षों को काटा और जलाया नहीं जाए। पारिस्थितिकी और पर्यावरण का ज्ञान भी आवश्यक है। जल चक्र का कुरआन में जिक्र किया गया है तथा इसके संरक्षण व प्रदूषण रहित करने पर भी हजरत मुहम्मद (सल्ल.) का ध्यान केंद्रित था। उनके निर्देश थे किसी पशु या पक्षी को आहार की आवश्यकता के अलावा मारा नहीं जाए। पशुओं के साथ मेहरबानी का बर्ताव किया जाए तथा उन पर अत्यधिक बोझ नहीं लादा जाए।

मस्तिष्क का संरक्षण व सुरक्षा

मानव का मस्तिष्क उसका महत्वपूर्ण अंग है। यही वह अंग है जो हमें अच्छे व बुरे की परख सिखाता है। धार्मिक कर्तव्यों का ज्ञान देता है। कुरआन उन लोगों की बुराई करता है, जिन्हें दिमाग दिया गया है, पर वे उसका उपयोग नहीं करते।

इस्लाम के अनुसार, ज्ञान प्राप्त करने के प्रयास मानव का अधिकार

ही नहीं, उसका कर्तव्य भी है। कुरआन का जो प्रथम शब्द प्रकट हुआ वह 'पढ़ो' है। कुरआन कहता है- 'ज्ञानी और अज्ञानी बराबर नहीं होते जैसे कि उजाला और अंधेरा बराबर नहीं है' और 'अल्लाह के वे बंदे जो जानते हैं, ज्ञान रखते हैं, वही उसकी ओर अधिक ध्यान लगाते हैं।' वैज्ञानिक अनुसंधान और न्यायिक शब्दावली भी अल्लाह के द्वारा अवतरित मानी गई है और जो जानकार हैं, उनको अनुसंधान का कर्तव्य सौंपा गया है। दिमाग पर किसी प्रकार का बंधन लगाने की मनाही है। कोई एक व्यक्ति दूसरे पर इसका अधिकार नहीं रखता। मस्तिष्क को बंधनकारक से दूर रखना और परेशानी, दबाव व तनाव से बचाकर रखना भी आवश्यक है। मस्तिष्क को सुन्न करने वाली वस्तु को घृणित माना गया है। इसीलिए शराब व नशा आवर दवाओं, वस्तुओं के सेवन को निषेध किया गया है।

धार्मिक स्वतंत्रता

अनेक इस्लामी विद्वानों ने धार्मिक स्वतंत्रता को प्राथमिकता दी है लेकिन मानसिक एकाग्रता के अभाव में धार्मिक कर्तव्यों का निर्वाह नहीं हो सकता। धर्म की स्वतंत्रता और इबादत का अधिकार सिर्फ मुसलमानों के लिए ही नहीं सबके लिए है। कुरआन ने फरमाया- 'धर्म के संबंध में कोई जबर्दस्ती नहीं।' (कुरआन २, २५६) इबादतगाहों का निर्माण करना जरूरी है लेकिन उनके कामकाज में बेजा दखलंदाजी करना और उनमें अपराध करना व शरारत करने से रोका गया है।[१२] जब कभी मुसलमानों पर उनके धर्म को लेकर आक्रमण किया जाए तो उन्हें अपनी सुरक्षा का अधिकार है।

व्यक्तिगत मिल्कियत की सुरक्षा

इस्लाम में व्यक्तिगत मिल्कियत या मालिकी की सुरक्षा का उचित प्रावधान है। दौलत कमाने और इकट्ठा करने पर रोक नहीं है, अगर वह जायज व न्यायपूर्ण ढंग से कमाई गई हो तो। गैर कानूनी तरीकों से दौलत कमाना निषेध है। ब्याज लेना व देना, धोखा, फरेब, चोरी करना व एकाधिकार की मनाही है। व्यापार-वाणिज्य का आदान-प्रदान स्पष्ट दर्शाते हुए पूंजी रखने और संलग्न कर्तव्यों की कर प्रणाली और लोक कल्याण के लिए दान करने के अधिकार दिए गए हैं। हर समर्थ व सक्षम मुसलमान को जकात अदा करने का हुक्म है। एक साल तक एकत्रित पूंजी पर ढाई प्रतिशत जकात

देना अनिवार्य है और कृषि से कमाई, पशु पालन और रिअल एस्टेट तथा कारखानों के लिए अलग-अलग मानक दर्शाए गए हैं। प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण सबकी मिली-जुली जिम्मेदारी है और कोई इस तरह का व्यवहार नहीं कर सकता मानो वह समुदाय से अलग किसी टापू पर रह रहा हो।

प्रजातियों का संरक्षण व सुरक्षा

विधिवत विवाह के माध्यम से ही शरीअत ने बच्चे पैदा करने की अनुमति दी है। शादी को विधिवत संपादित करना और उसका दस्तावेजीकरण आवश्यक करार दिया गया है। वंशावली व पैदायश संबंधी जानकारी आवश्यक है इसलिए शादी का न्यायिक होना कि जिससे माता-पिता की वास्तविकता ज्ञात हो जाए, जरूरी है। विवाह पूर्व या विवाहेतर शारीरिक संबंधों की इस्लाम में सख्त मनाही है। ऐसे अवैध संबंधों की बाबत अगर चार लोगों की गवाही मिल जाए तो इसके लिए सख्त सजा का प्रावधान है।

नैसर्गिक या कृत्रिम तरीकों से परिवार नियोजन की अनुमति है, लेकिन भ्रूण का नष्ट करना निषेध है क्योंकि भ्रूण को भी जीवन का अधिकार है और उसे भी वसीयत या विरासत में हिस्से का हक है। बच्चे पैदा करना और बांझपन का इलाज करने की आवश्यकता व अनुमति है। दो साल तक बच्चे को स्तनपान कराने की भी अनुमति है।

पश्चिमी देशों की तरह इस्लाम में गोद लेने की अनुमति नहीं है। हां, लोक कल्याणार्थ जरूरतमंद बच्चों का लालन-पालन करने या उनकी जिम्मेदारी उठाने की अनुमति है। इसमें बच्चों को उनके वास्तविक माता-पिता के बारे में बताना जरूरी है, लेकिन इसे वास्तविक पारिवारिक बंधन नहीं माना जाएगा। अगर ये बच्चे वास्तविक भाई-बहन न हों तो आपस में विवाह भी कर सकते हैं।

पति-पत्नी, पालकों व बच्चों के आपसी अधिकार और कर्तव्य शरीअत में विस्तार से प्रस्तुत किए गए हैं। पारिवारिक व्यवहार व उत्तराधिकार के नियम भी बताए गए हैं। परिवार को संभालना पति का उत्तरदायित्व है, पत्नी का उत्तरदायित्व ऐच्छिक होता है, न कि आवश्यक। महिलाओं के कार्य करने, स्वतंत्र मिल्कियत रखने और उत्तराधिकार व शिक्षा प्राप्ति को मान्यता है। मर्द और औरत बराबर हैं और दोनों के लिए जायज व नाजायज के इस्लाम में

स्पष्ट आदेश हैं।

चर्च और राज्य

यूरोप में जंग के दौरान चर्च (धर्म) और राज्य को जुदा कर दिया गया है। प्राचीन चर्च द्वारा वहां के जनजीवन पर जो प्रभुत्व स्थापित कर लिया गया था, उनसे संबंधित बातें ईसा मसीह (अ.) की पुरानी पुस्तकों में दर्ज नहीं हैं। इनके द्वारा वैचारिक स्वतंत्रता और वैज्ञानिक उन्नति में रुकावट पैदा करने के अनेक जानेमाने उदाहरण इतिहास में दर्ज हैं। बाद में अमेरिका ने भी यही तरीका अपनाया, इसमें विभिन्न धर्मों पर आधारित समाज में धार्मिक स्वतंत्रता के विचार के तहत एक आस्था के दूसरे पर हावी होने से बचने के लिए उपाय किए गए थे। यूरोपीय ईसाईयत के धार्मिक उग्रवाद से तंग आकर अमेरिका जाकर बसने वाले अनेक व्यक्ति व परिवार परेशान होकर भाग गए थे।

जैसा कि हम जानते ही हैं कि चर्च और राज्य को जुदा रखना ईसाइयत की अनिवार्यता है। इसका मकसद यह है कि इंसान की आत्मा का शुद्धिकरण हो। न्यू टेस्टामेंट के अनुसार ईसा मसीह की हुकूमत या जायदाद इस दुनिया की नहीं है।

जब किसी से पूछा गया कि (सम्राट) सीजर का आदर व सम्मान आवश्यक है, तो उन्होंने सीजर के चित्र वाले सिक्के को देखकर कहा कि सीजर को उसका अधिकार दो और अल्लाह को उसका।

अमेरिका में रहने वाले मुसलमान भी धार्मिक स्वतंत्रता व सामाजिक एकता के साथ अन्य व्यावहारिक लोगों की तरह धर्मांधता का दबाव सहन करना पसंद नहीं करते हैं। यही इस्लाम का व्यवहार व शिक्षा भी है।

यहां एक ऐसी समस्या का जिक्र जरूरी है, जिससे अमेरिकी मुसलमान, ईसाई व यहूदी भी चिंतित रहते हैं। इनका ऐसा मानना है कि जबसे धर्म और राज्य को पृथक किया गया, तब से अमेरिका व पश्चिम के मूल्य तथा व्यवहार में परिवर्तन आ गया है। इसका दुरुपयोग कर वैश्विक नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन और इन्हें आमजन के जीवन से बाहर कर दिया गया है। अमेरिकन मीडिया में विगत चार दशकों से बहस चल रही है कि क्या खुदा की मृत्यु हो चुकी है? और इससे अनेक लोग प्रभावित हैं। जो लोग यह

मानते हैं कि खुदा जीवित है और उसकी हुकूमत है और उसके आदेशानुसार हमें जीना व मरना चाहिए, तब हम अपने जीवन का और अपने राष्ट्र का क्या करें। पोर्नोग्राफी, अश्लील साहित्य और सामाजिक बुराइयां कई बार चर्च और राज्य को पृथक करने की देन समझे जाते हैं। 'अल्लाह की छत्रछाया में एक राष्ट्र' और 'अल्लाह पर हमें विश्वास है' जैसे स्लोगन अब निरर्थक जैसे लगने लगे हैं। वह दिन शायद दूर नहीं कि जब इन्हें भुला दिया जाए।

इस्लामी मुल्कों में मुसलमान इस्लामी कानून के अनुसार जीवन गुजारने की इच्छा रखते हैं, इस पर पश्चिम में बहुत से लोग असहमति जताते हुए कुपित हो जाते हैं। यह उनके लिए अमान्य और खेद का विषय है क्योंकि इसी कारण धर्म और राज्य यूरोप में जुदा हुए हैं। वह तो चर्च के दबाव को ही नापसंद करते हैं, जिसके कारण चर्च और राज्य को पृथक होना पड़ा। हालांकि यह नतीजा दुरुस्त नहीं है क्योंकि दोनों जगह स्थिति एक समान नहीं है।

जब हम इस्लाम को पढ़ेंगे या उसका अनुशीलन करेंगे कि यहां धर्म और राज्य को पृथक करने का कोई उसूल नहीं है, क्योंकि ईसाइयत में राज्य की कोई धारणा नहीं है और इस्लाम में कोई चर्च नहीं है तो यहां एक-दूसरे पर लादने या दिखाने का कोई अवसर नहीं है। हालांकि इस्लाम में विद्वत्ता है लेकिन मुल्लाइयत (पुरोहितवाद, पंडागिरी) नहीं है और मुल्लाइयत का कोई संस्थान भी नहीं है। यह अलग बात है कि इस्लामी राष्ट्रों में उलेमा (धार्मिक विद्वानों) ने विशेष लिबास अपना लिया है लेकिन इसकी कोई विशेषता नहीं है। और यह पोषाक उन्हें कोई बुजुर्गी प्रदान नहीं करती है। इस्लाम के प्रारंभिक काल में इसके लिए कोई विशेष पोषाक नहीं थी। यह तो बाद में वजूद में आई, जैसे सेना और पुलिस की पोषाक और डॉक्टर की पोषाक अलग-अलग हो गई। धर्म का ज्ञान और उसकी व्याख्या पर किसी समुदाय विशेष का एकाधिकार नहीं है, हालांकि विद्वत्ता और विशेषज्ञता को प्रोत्साहन दिया गया है।

लेकिन उसको पवित्रता नहीं माना गया है। यह इस्लाम का कोई हिस्सा नहीं है कि केवल उलेमा प्रशासन चलाएं। जाहिर है उन्हें तकनीकी और प्रशासनिक जिम्मेदारियों का ज्ञान नहीं होता। कोई भी कामकाज काबिलियत के आधार पर ही प्रदत्त किया जाएगा, जिसमें मुस्लिम या गैर मुस्लिम में फर्क नहीं किया जाएगा।

इस्लामी उसूलों पर एक नजर डालने से यह जाहिर होता है कि शरीअत, इस्लामी विधान विभिन्न कानूनों का आधार है। धर्म निरपेक्षता का ईसाइयत में कोई मुकाम नहीं है, लेकिन इस्लाम के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि ऐसा माना जाए तो कुरआन और सुन्नत के खिलाफ अमल होगा। वह इस तरह कि जो ईसाई समाज को मान्य होगा, वह मुस्लिम समाज को भी मान्य होगा, ऐसा आवश्यक नहीं है। लेकिन इनमें से प्रत्येक धार्मिक स्वतंत्रता के व्यक्तिगत अधिकार को मान्यता प्रदान करता है।

किसी भी इस्लामी या ईसाई कौम को यह अधिकार नहीं है कि वे अपने विचार और नजरिये एक-दूसरे पर थोपें। लेकिन यूरोप में ऐसा नहीं दिखता है। वहां तो मुसलमानों की राह में उनके खुद के उसूलों और धर्म के अनुसार कार्य करने पर रुकावटें पैदा की जाती हैं। धर्मनिरपेक्ष तानाशाही और तानाशाही दोनों ही इसका समर्थन करते हैं। वे अपने आप को इस्लामी अधिकारों और मानवाधिकारों की सुरक्षा करने वाले दर्शाते हैं, लेकिन ऐसा है नहीं। पुरुष व नारी को आधारभूत स्वतंत्रता देना तथा लोगों की सरकार लोगों के लिए तो सच्ची इस्लामी हुकूमत की पहचान है। वास्तव में तो इस समय कोई सरकार ऐसी नहीं है जिसे इस्लाम की प्रतिनिधि सरकार के रूप में प्रस्तुत किया जा सके। जब कभी किसी देश में प्रजातांत्रिक रूप से किसी इस्लामी पार्टी को फतह हासिल होती है, तो बड़े लोकतांत्रिक देशों का एक झूठा और शर्मनाक गठजोड़ वजूद में आ जाता है। फौरन उस देश की तानाशाही सरकार इस प्रजातांत्रिक क्रिया को रोक देती है। अवाम के जरिये चुनी हुई इस्लामी पार्टी को इसका भी मौका नहीं दिया जाता कि वह अपने आपको प्रमाणित करे या नाकाम हो जाए। दुखद है कि प्रजातांत्रिक देश प्रबल रूप से इसके इच्छुक दिखते हैं कि उस देश की स्थिति वैसी की वैसी ही रहे।

इस्लामी राष्ट्रों द्वारा जब कभी अपने यहां का शासन इस्लामी सिद्धांतों के आधार पर चलाने की मांग की जाती है, तब उनके खिलाफ फौरन ईसाई व यहूदी अल्पसंख्यक समुदायों की स्थिति का प्रश्न खड़ा कर दिया जाता है।

इसे मीडिया और राजनीतिज्ञ दोनों मिलकर उठाते हैं, जबकि वास्तविकता से दोनों को कोई मतलब नहीं होता। यह बात कम ही लोगों को पता है कि इस्लामी तंत्र दोनों समुदायों को इसकी

आज्ञा देता है कि वे संविधान के दायरे में अपने न्यायिक मामले भी अपने धर्मों के आधार पर तय करें। हालांकि ऐसे मुद्दे कम और परिवारों से जुड़े (जैसे विवाह, तलाक, विरासत आदि) हैं। इसके अलावा लोकतांत्रिक सिद्धांतों के आधार पर इन अल्पसंख्यक समुदायों को बहुसंख्यकों के बराबर ही अधिकार प्राप्त होते हैं।

हम अपनी बातों में पूरी तरह ईमानदार न होंगे, अगर शरीअत की व्यवस्था लागू करने के बारे में चंद बातें और न कर लें। कई बार ऐसे प्रयास भावनाओं व स्लोगनों के शिकार हो गए हैं। कुछ अति उत्साही युवकों ने इसे दूसरे धर्मों के साथ टकराव के रूप में भी परिवर्तित कर दिया। जबकि शरीअत उनसे एकदम विपरीत व्यवहार की मांग करती हैजिसमें लोगों के दिल से इस व्यवस्था को लेकर व्याप्त भय निकालना, बेचैनी दूर करना और व्यावहारिक रूप से अच्छे नागरिक होने के उदाहरण पेश करने होंगे। मुख्यधारा के मुसलमानों और विभिन्न इस्लामी आंदोलनों को यह काम आगे बढ़ाना होगा, हालांकि उन्हें इसके लिए पश्चिमी मीडिया और राजनीतिक क्षेत्रों से शायद ही कोई सहयोग मिल पाए।

लोकतांत्रिक मार्ग पर चलने का निश्चय करने वाली इस्लामी राजनीतिक पार्टियों को भी कुछ सुझाव देने की जरूरत है। चूंकि वे इस्लाम के आकर्षक बैनर तले चुनावी युद्ध में उतरती हैं, सो उन्हें चाहिए कि वे शरीअत लागू करने के बारे में विस्तारित व व्यावहारिक योजना प्रस्तुत करें। इस्लाम कोई जादुई चिराग नहीं है, जो आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याएं चुटकी बजाते हल कर दे। इन्हें अच्छी तरह हल करने की योजनाएं, प्रस्ताव शरीअत के दायरे में गहन तकनीकी और विशेष अध्ययन कर प्रस्तुत किए जाने चाहिए।

इस्लाम पर आधारित प्रजातंत्र के लिए संघर्ष करने वालों को चाहिए कि वे अपने वादों के प्रति ईमानदार रहें और उन्हें लेकर शाब्दिक जाल न बुनें। किसी इस्लामी पार्टी का सबसे बुरा हाल तो यह है कि वह लोकतंत्र में सत्ता हासिल करने के बाद अपने किए हुए वादे पूरे न कर पाए और इस बाबत अपनी असफलता को स्वीकार भी न करे। गलती से वह यह भी सोचे कि उसकी नाकामी को इस्लाम की नाकामी समझा जाए। ऐसे में लोग उन्हें हटाने का प्रण कर लें तो वे तानाशाही पर उतर आएं। हालांकि इस्लामी पार्टियों को अभी मौका दिया जाना है, और इससे पहले उनके बारे में ऐसे पूर्वानुमान

लगाना ठीक न होगा।

आमजन की इच्छा के बिना सत्ता पर काबिज रहने वाली इस्लामी पार्टियां बुरी तरह असफल हो चुकी हैं। दुनिया के बड़े लोकतांत्रिक देश उनकी नैतिक या किसी भी तरह की अन्य सहायता करने से इंकार कर देते हैं। अब कभी भी इस्लामी पार्टियां सत्ता में आएं तो हमारी उनको सलाह है कि वे ऐसा कभी न करें। उनके लिए न केवल इस्लामी शासन व्यवस्था जरूरी है बल्कि उन्हें इस्लामी चरित्र और शराफत की भी जरूरत है। कुछ प्रसिद्ध उदाहरण ऐसे हैं, जो शरीअत के अनुसार शासन करने की शेखी बघारते हैं, लेकिन हमारे विचार से या तो उनमें ईमानदारी और ज्ञान की कमी है या शरीअत के बारे में जानकारी की भी, या इन सबकी।

शरीअत की व्यवस्था को पूरी तरह लागू न कर कुछ छोटे-मोटे मामलों तक सीमित करके रख देना धोखेबाजी है। बड़े-बड़े भ्रष्टाचारियों या राष्ट्र के स्रोतों का अवैधानिक तरीकों से दोहन करने वालों को पकड़ने के प्रयास करने के बजाय छोटे-मोटे अपराधों के लिए सख्त सजाएं देना भी इस्लामी तरीका नहीं हो सकता।

शासक को इस्लाम में सेवक माना गया है, वह मालिक नहीं है और राष्ट्र के प्रति जवाबदेह है। यह इस्लाम के विरुद्ध है कि आमजन व कमजोरों से तो सख्ती के साथ जवाब तलबी की जाए और प्रभावशाली वर्ग को छोड़ दिया जाए। शरीअत पहले प्रभावशाली व सक्षम लोगों पर लागू करना चाहिए, न कि आखिरी पंक्ति के लोगों को इसके प्रावधानों का निशाना बनाया जाए। अपराध उन्मूलन के लिए इस्लाम ने त्रिस्तरीय व्यवस्था दी हैः (शिक्षा व मार्गदर्शन के द्वारा) इस्लामी चेतना जागृत करना, (सामाजिक व आर्थिक) समस्याएं हल करना जिनके कारण अपराध जन्म लेते हैं और अंततः सजाएं, इसी क्रम से ये कार्य संपादित किए जाने चाहिए। और तब, कानून की कोई सीमा नहीं है।

लोकतंत्र

इन दिनों यह प्रश्न कई बार उठाया जाता है कि इस्लाम में लोकतंत्र के लिए कोई स्थान है या नहीं। कई ऐसे समूह, जो किसी के साथ नहीं चल सकते, इससे असहमति जताते हैं। यह उन्हीं मुस्लिम विद्वानों के समूहों की तरह हैं जो कुछ समय पहले तक पश्चिमी प्रयोगों पर मोहित थे और उसके अंधानुकरण की सलाह देते थे।

अब पश्चिम के नैतिक व चारित्रिक पतन तथा राजनीतिक अन्याय व शोषण को देख इनमें से कई का भ्रम टूट गया है और वे पश्चिम की हर शय से पीछा छुड़ाना चाहते हैं। अलबत्ता इस्लामी राष्ट्रों के लोकतांत्रिक तानाशाह जरूर प्रजातंत्र से घृणा करते हैं और आम मुसलमानों में इसे गैर इस्लामी प्रस्तुत करते हैं।

ऐसे तानाशाह, जिन्होंने इस्लामी पोशाक धारण कर खुद को भी इस्लामी घोषित कर रखा है, वे यह भी प्रचारित करते हैं कि इस्लाम में लोकतांत्रिक व्यवस्था का कोई स्थान नहीं है। उनके दरबार में सम्मान पाने वाले धार्मिक विद्वान इसमें उनका समर्थन करते हैं।

पश्चिम में इस्लाम के परंपरागत विरोधी राजनीतिक समूह व मीडिया भी निरंतर इस धर्म को लोकतंत्र विरोधी बताते हुए घोषणा करता रहता है कि इस्लाम में लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं है। वे इस्लामी राष्ट्रों में प्रजातंत्र नहीं होने का मुद्दा भी उठाते रहते हैं। निश्चित ही उनका उद्देश्य पश्चिमी जन मानस को इस्लाम से और दूर करना है, ताकि उनकी सरकारों द्वारा मुसलमानों के साथ किए जा रहे भेदभाव तथा अन्याय के विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठा सके। लेकिन वे यह क्यों नहीं बताते कि ऐसे तानाशाहों को पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों द्वारा दिए जा रहे भरपूर सहयोग के चलते ही मध्य पूर्व के लोकतंत्र समर्थक लोगों की आवाजें दबाई जाती हैं।

यह शायद व्यावहारिक नहीं होगा कि सातवीं शताब्दी की इस्लामी व्यवस्था की तुलना पश्चिमी लोकतांत्रिक व्यवस्था से की जाए, जिसने कई सदियों बाद जन्म लिया। वैसे भी पश्चिमी देशों की लोकतांत्रिक व्यवस्था एक-दूसरे से मेल नहीं खाती है। बस, वे प्रजातंत्र के विचार और सिद्धांतों का पालन करते हैं। १४०० साल पहले कुरआन ने ‹शूरा› (सलाहकार परिषद) का विचार प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार सारे मामले परस्पर विचार-विमर्श कर आपसी सहमति से तय किए जाएं। पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) और उनके तत्काल बाद वाले खलीफाओं ने शूरा के माध्यम से निर्णय लेकर खुद को प्रजातंत्र का अग्रदूत सिद्ध कर दिया।

सिवाय पैगंबरियत के हजरत मुहम्मद ने खुद को आम इंसान के रूप में प्रस्तुत किया। अल्लाह से मिलने वाले निर्देश आमजन तक

पहुंचाने और उनको प्रशिक्षित करने के साथ उन्होंने इसे स्पष्ट कर दिया था कि वे आम इंसानों की तरह हैं। वे भविष्य वक्ता नहीं हैं और न ही हर क्षेत्र में विशेषज्ञता का उन्होंने दावा किया। इसे दो-एक घटनाओं से समझा जा सकता है। बद्र की जंग की पूर्व संध्या में हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने सैन्य रणनीति प्रस्तुत करते हुए अपने मुट्ठी भर सैनिकों को युद्ध स्थल में तैनात करने की योजना बताई। एक साथी ने पूछा- ‹यह योजना अल्लाह की ओर से अवतरित हुई हो तो हम इसका पालन करने पर दृढ़प्रतिज्ञ हैं, या यह रणनीति और योजना का हिस्सा हैं? पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने बाद वाली बात स्वीकार की। इस पर उस साथी ने मैदान में फौज उतारने की दूसरी रणनीति बताई। हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने उसे स्वीकार किया और उसी योजना के तहत सेना उतारी गई। मूर्तिपूजक अरब समूहों और मुसलमानों के बीच हुए इस प्रथम महत्वपूर्ण युद्ध में इस्लामी सेना ने भारी विजयश्री का वरण किया।

बरसों बाद इस्लाम के दुश्मनों ने मदीना पर हमला करने की योजना बनाई। हजरत मुहम्मद (सल्ल.) का विचार था कि दुश्मनों को मदीना तक आने दिया जाए तथा यहीं उनका मुकाबला किया जाए। लेकिन विचार-विमर्श में यह निकलकर आया कि मदीना से दूर ‹उहृद› पहाड़ के नजदीक शत्रुओं से लोहा लिया जाए। शूरा के नियमों का पालन करते हुए पैगंबर (सल्ल.) ने बहुमत का साथ दिया। इसमें मुसलमानों को प्रारंभिक विजय प्राप्त हुई और दुश्मन सेना भाग निकली। रणनीति के तहत पहाड़ की चोटी पर एक टुकड़ी को तैनात किया गया था, जिसे हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के स्पष्ट आदेश थे कि चाहे कुछ हो जाए, तुम वहीं जमे रहना। दुश्मन की खस्ता हालत देख वह टुकड़ी पैगंबर (सल्ल.) के आदेश को दरकिनार कर मैदान में कूद पड़ी।

शत्रुओं की एक टुकड़ी का नेतृत्व कर रहे अद्भुत सैन्य कमांडर खालिद बिन वलीद ने इसे भाप लिया और अपने सैनिकों को जमा कर उस पहाड़ी से जबर्दस्त आक्रमण कर दिया। पीछे से हुए इस हमले से मुसलमान अचंभित रह गए। इससे युद्ध का सारा समीकरण गड़बड़ा गया और मुसलमानों को भारी क्षति उठानी पड़ी। इसमें मुसलमानों की ओर से दो भारी गलतियां हुई थीं, कुछ समय बाद ही इस बाबत कुरआन की आयतों में कहा गया- तो अल्लाह की ओर से बड़ी दयालुता है जिसके कारण तुम उनके लिए

नर्म हो रहे हो, यदि कहीं तुम स्वभाव से क्रूर और कठोर ह्रदय होते तो यह सब तुम्हारे पास से छंट जाते। अतः उन्हें क्षमा कर दो और उनके लिए क्षमा की प्रार्थना करो। और मामलों में उनसे परामर्श कर लिया करो। कुरआन (३, १५९)

इस तरह शूरा जीवन के हर पहलू में व्याप्त है। भले वह कोई मामूली मामला दिखता हो, लेकिन कुरआन में उसका वर्णन किया गया है। जैसे बच्चे का दूध छुड़ाने का मामला भी उसके अभिभावकों तथा संबंधियों (शूरा) की सलाह से ही तय करना चाहिए।

पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के बाद पैगंबरों की परंपरा समाप्त हो गई। अब कोई और पैगंबर नहीं आएगा, लेकिन उनके बाद राज्य प्रमुख की हैसियत से एक व्यक्ति को नियुक्त किया गया। इस व्यक्ति यानी खलीफा का चयन खुली सभा में हुआ। इस्लाम की पहली खिलाफत के लिए कई प्रतियोगी मैदान में थे। परंतु हजरत मुहम्मद के सर्वाधिक निकट रहे हजरत अबु बक्र (रदि.) का नाम जैसे ही प्रथम खलीफा के लिए सामने आया तमाम लोग पीछे हट गए। सर्वानुमति से उनका चयन हुआ। उस अवसर पर अबु बक्र द्वारा इस्लामी सिद्धांतों को लागू किया गया। एक मुस्लिम नेतृत्वकर्ता के चयन की प्रणाली और मुस्लिम समुदाय में उसकी भूमिका के बारे में यहां संक्षिप्त रूप से बताया जा रहा है-

1. यह पद जनादेश द्वारा भरा जाना चाहिए। (खलीफा के रूप में चयनित होते ही अबु बक्र ने उन लोगों की राय ली जो बैठक में अपस्थित नहीं हो पाए थे)

2. यह नियुक्ति शर्तों पर आधारित होती है। (खलीफा ने यह घोषणा की कि 'जैसे मैं अल्लाह के आदेशों का पालन करता हूं, वैसे ही तुम लोग मेरे आदेशों का पालन करना।)

3. अपने मुखिया को चुनने वालों के पास अपना यह निर्णय वापस लेने का भी अधिकार होता है। (अबु बक्र (रदि.) ने घोषणा की कि अगर वह अल्लाह के आदेशों के खिलाफ काम करें तो लोग भी उनकी बात मानने से इंकार कर दें)।

4. शासक राष्ट्र का सेवक है। उसे अपने कर्तव्य पूरे करने के लिए अनुबंधित किया गया है। (अबु बक्र को खिलाफत के साथ अपना काम-धंधा करते देख, लोगों ने उन पर एक सामान्य मुसलमान के समान वेतन लेने का दबाव बनाया ताकि वे पूरे समय खिलाफत का काम करें)।

5. राज्य का मुखिया विशेष स्वार्थ रखने वाले समूह, उच्च वर्ग के प्रभाव में नहीं आएगा। अबु बक्र ने इस बाबत कहा- 'तुम में से कमजोर मेरे समक्ष बलवान है, जब तक कि मैं उसके अधिकारों की रक्षा करूं, और समृद्ध मेरे सामने दुर्बल है, जब तक कि राज्य अपने अधिकार उससे प्राप्त न कर ले।'

संक्षेप में यह कि आज के इस्लामी राष्ट्रों में जो कार्य किए जा रहे हैं, वे इन कार्यों से एकदम विपरीत हैं, जिनकी ऊपर चर्चा की गई। इसमें संदेह नहीं कि इस्लामी आदर्शों के आधार पर लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित की जाए तो न सिर्फ इस्लामी साम्राज्य का विस्तार हो बल्कि इस्लामी सभ्यता का भी विकास हो। ऐसी इस्लामी लोकतांत्रिक व्यवस्था इस समय की सारी बुराइयों से दूर सर्वोत्तम प्रजातांत्रिक व्यवस्था हो सकती है।

बाद में इस व्यवस्था ने और भी ऊंचे प्रतिमान स्थापित किए। द्वितीय खलीफा हजरत उमर (रदि.) ने राष्ट्र को सचेत किया कि अगर वे ठीक ढंग से काम करें तो उन्हें स्वीकार किया जाए और गलत होने पर सुधार करें। इस पर एक व्यक्ति ने प्रतिक्रिया दी- 'अगर तुम भटके तो हम तुम्हें ठीक कर देंगे, अगर तलवार का सहारा लेना पड़े तो भी।' इस पर खलीफा ने उत्तर दिया- 'तुम अच्छे इंसान नहीं होते अगर यह न कहते, और हम अच्छे नहीं होते अगर यह स्वीकार न करते।'

दुर्भाग्य से खलीफाओं की यह स्वर्णिम परंपरा इस्लामी इतिहास की एक दुखद बल्कि बेहद दुखद घटना के बाद टूटती चली गई। तृतीय खलीफा हजरत उस्मान (रदि.) भाई-भतीजावाद के आरोपों के बीच एक बगावत झेलते हुए कत्ल कर दिए गए। उनके स्थान पर पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के चचेरे भाई व दामाद

हजरत अली (रदि.) तुरंत ही खलीफा बनाए गए। हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के प्रिय हजरत अली (रदि.) खुद भी बहुत सी खूबियों के धनी थे, जब उन्हें खलीफा चुना गया तो आमजन सहित प्रतिष्ठित लोगों ने निष्ठा दिखाई। इसके बावजूद तब इस्लामी साम्राज्य के एक अंग सीरिया के गवर्नर मुआविया ने इस बाबत वचन देने से इंकार करते हुए मदीना की ओर सैन्य मार्च शुरू कर दिया। उसका घोषित वक्तव्य खलीफा हजरत उस्मान (रदि.) के हत्यारों को सजा देना था कि वे भी उमैया कबीले से संबंध रखते थे।

उमैया ने न्यायालयीन कार्रवाई को लंबी मानते हुए तत्काल बदले की मांग की। युद्ध में हजरत अली (रदि.) को विजय मिली लेकिन प्रभावशाली मुआविया (रदि.) के साथ कुछ क्रूर व्यक्ति भी थे। उन्होंने षड्यंत्रपूर्वक मुआविया (रदि.) व हजरत अली (रदि.) दोनों पर आक्रमण कर दिया। इस हमले में हजरत अली (रदि.) की जान चली गई, जिससे पूरा इस्लामी साम्राज्य हतप्रभ रह गया। बाद में विचार-विमर्श के बाद हजरत अली (रदि.) के सुपुत्र हजरत हसन (रदि.) को खलीफा बनाया गया, जिन्होंने साथियों की सहमति से खून-खराबा टालने के लिए मुआविया (रदि.) को समर्थन दे दिया।

इसके कुछ समय बाद ही प्रभावशाली मुआविया (रदि.) ने लोगों को हतप्रभ करते हुए अपने पुत्र यजीद को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कराने के लिए दबाव डाला। हजरत अली (रदि.) के द्वितीय पुत्र हजरत हुसैन (रदि.) ने यजीद के खिलाफ एक बगावत का नेतृत्व किया। उस समय हजरत मुआविया (रदि.) और हजरत हसन (रदि.) दोनों की मृत्यु हो चुकी थी। इराकवासियों ने हजरत हुसैन (रदि.) की सहायता करने का वादा किया था लेकिन सत्ताधारियों की चालों और क्रूरता से डरकर यह वादा पूरा नहीं किया और हजरत हुसैन (रदि.) को अकेला छोड़ दिया।

मैदान छोड़ने या हथियार डालने के बजाय अपने मुट्ठी भर वफादार समर्थकों के साथ हजरत हुसैन (रदि.) ने यजीद की भारी-भरकम फौज का सामना किया। करबला के मैदान में वे बहादुरी से लड़े और अपने साथियों के साथ शहीद हो गए। बाद में यह संघर्ष दो सदियों पर फैले उमैया साम्राज्य के ताबूत की पहली कील साबित हुआ।

इस घटना ने शियाइज्म को जन्म दिया। अपने आपको हजरत

अली (रदि.) का समर्थक (अरबी में शिया) मानने वाले ये लोग कट्टरपंथी थे। वास्तव में तो यह एक राजनीतिक फूट थी लेकिन बिना धर्म का सहारा लिए राजनीति संभव नहीं थी। समय के साथ शियाइज्म एक अलग इस्लामी समुदाय के रूप में उभरा, इस विचारधारा के साथ कि प्रथम खलीफा हजरत अली (रदि.) को होना चाहिए था।

बाद में आंतरिक मतभेदों के चलते शिया कई वर्गों मं बंट गए। इनका एक बड़ा वर्ग १२ इमामों को मानता है, जिनका विश्वास है कि रहस्यमय ढंग से बचपन में लापता हुए १२वें इमाम, किसी दिन मेहदी (अ.) के रूप में लौटेंगे और न्याय करेंगे। मुसलमानों की आबादी का १० प्रतिशत भाग शिया हैं। बाकी परंपरागत रूप से सुन्नी कहे जाते हैं। खिलाफत के प्रारंभिक दौर की घटनाओं को लेकर शिया समुदाय सुन्नियों से ईर्ष्या रखता है लेकिन वे कुरआन व पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) पर आस्था रखते हैं।

प्रतिवर्ष शिया लोग कर्बला के युद्ध और हजरत हुसैन (रदि.) को याद करके मातम मनाते हैं कि अत्यंत विकट परिस्थितियों में हजरत हुसैन (रदि.) को अकेला छोड़ दिया गया था। यह भी सत्य है कि सुन्नी समुदाय हजरत अली (रदि.) से हमदर्दी रखते हुए उनका व उनके परिजनों, विशेषकर बेटों- हजरत हसन व हुसैन (रदि.) का सम्मान करते हैं।

संक्षिप्त रखने के बावजूद इतिहास की बातें काफी हो गईं। अब हम वापस अपने विषय, यानी लोकतंत्र की तरफ लौटते हैं। उक्त दर्दनाक ऐतिहासिक घटनाक्रम दुर्भाग्यपूर्ण ढंग से सत्ता हस्तांतरण से जुड़ गया, जो इस हाथ से उस हाथ राष्ट्र के हित में नहीं बल्कि तलवार और धन के बल पर हस्तांतरित होती रही। इससे बाद का मुस्लिम इतिहास ग्रसित रहा। निरंकुश हुक्मरानों को सदैव धार्मिक विद्वानों का सहयोग मिलता रहा, जो अपने हित साधकर शासकों के कामों को तर्कसंगत व न्यायसंगत ठहराते थे। अन्य लोग जो शासकों के खिलाफ आवाज उठाते, उन्हें इसकी कीमत जान या अपनी स्वतंत्रता देकर चुकानी पड़ती थी। ऐसे में अगर शासक ठीकठाक हुआ तो मामले ठीकठाक रहते थे, अन्यथा आमजन के अधिकारों का हनन तय था।

इसके बावजूद मुस्लिम सभ्यता फूली-फली तो उसके पीछे कारण

यह था कि एक वर्ग सदैव ज्ञान प्राप्ति, वैज्ञानिक प्रयोगों में श्रेष्ठता प्राप्त कर सभ्यता विकसित करने को धार्मिक कर्तव्य मानकर इसमें लगा रहता था। शासक वर्ग बहुधा उनकी सहायता व सम्मान करता, लेकिन तब तक ही जब तक कि यह वर्ग आमजन के हितार्थ या हुक्मरानों द्वारा हथिया लिए गए अधिकारों की बात नहीं करता। यह देख इस वर्ग ने सभ्यता के दूसरे पहलुओं पर ध्यानाकर्षित किया। उन्होंने आमजन के अधिकारों पर भी अद्भुत व प्रभावकारी ढंग से लिखा लेकिन बहुत कम।

वे मुस्लिम बंधु जिन्होंने प्रजातंत्र के साथ इस तरह खिलवाड़ किया, उनसे मैं कहना चाहूंगा कि लोकतंत्र कभी भी मुस्लिम राष्ट्रों की कमजोरी नहीं थी। वे तो निरंतर तानाशाही से पीड़ित रहे। अगर हमने इस ऐतिहासिक तथ्य की अनदेखी की तो मानो हम नेत्रहीन हैं। जो लोग इस्लाम को प्रजातंत्र विरोधी बताते हैं, वे गलत हैं। हां, इस्लाम और लोकतंत्र के बीच एक भारी अंतर जरूर है। अगर वोटर चाहें तो, पश्चिमी लोकतंत्र में गॉड जीत या हार सकता है। जबकि इस्लामी संविधान शरीअत पर आधारित होता है, सो जब भी कोई संवैधानिक प्रावधान शरीअत के खिलाफ हो, वह स्वतः ही असंवैधानिक हो जाएगा। इस परिदृश्य में प्रजातांत्रिक क्रिया सौ प्रतिशत पूर्ण की जा सकती है।

वर्तमान इस्लामी पुनरुत्थान अत्यंत प्रचारित अतिवादी, हिंसक प्रतिक्रियावादी, तानाशाही धर्मनिरपेक्ष और अर्द्ध धार्मिक सरकारों की छवि से बाहर आ रहा है। एक खुले दिमाग की, आलोकित मुख्यधारा धार्मिक सत्य प्राप्त करके ऐतिहासिक भूलों से सीख ले चुकी है।

यह दूसरों के विरुद्ध भड़काउ नारे नहीं लगाती, बल्कि तथ्यात्मक आधार पर सुधार का काम करती है क्योंकि इस्लामी विद्वान लंबे समय से अनुभव कर रहे हैं कि न्यायवादी व्यवस्था पर आधारित एक गैर इस्लामी राज्य ऐसे इस्लामी राज्य से बेहतर है, जिसमें अन्याय और उत्पीड़न हो।

आंतरिक चेतना

इस्लाम के पांच स्तंभ

अध्याय १ और २ में अल्लाह और उसके प्रति आस्था का वर्णन

किया गया है जिसके बारे में पैगंबर हजरत मुहम्मद ने कहा है- "तुम अल्लाह पर भरोसा रखो, उसके फरिश्तों पर, उसकी किताबों पर, उसके पैगंबरों पर, कयामत के दिन पर और किस्मत पर (अल्लाह ने हमारे लिए पहले से सब कुछ तय कर रखा है। इस बात से इंकार नहीं कि हम अपनी स्वेच्छा से काम नहीं कर सकते परंतु उस बात को बताता है कि अच्छाई और बुराई को हम समझकर अपने आप पर नियंत्रण रख सकते हैं।)" हमारी इन बातों के प्रस्तुतिकरण में हठधर्मिता शामिल नहीं है। हम यह नहीं कह रहे हैं कि हमारे बातें आंखें मूंदकर मान लो, इन्हें हमने तथ्यों से समझाया है। कुरआन के तर्क मानव को विचार करने पर प्रेरित करते हैं। इसमें किसी भी तर्क को मानने के लिए बाध्य करने के बजाय उसे समझाने की कोशिश की गई है।

इस्लामी आस्था (अल्लाह सिर्फ एक है) इब्राहीमी धर्मों यानी ईसाइयत व यहूदियत में भी मौजूद है। इस्लाम में बताया गया है कि अल्लाह के जितने भी पैगंबर, संदेशवाहक आए, वे और उनके अनुयायी मुसलमान यानी इस्लाम को मानने वाले हैं। इस्लाम का अर्थ अल्लाह के आदेशों के सम्मुख पूरी तरह समर्पण है। इस अध्याय में हम इस्लाम और उसकी शरीअत की चर्चा करेंगे। इसमें शरीअत के एक विशेष भाग का वर्णन किया जाएगा, जो अल्लाह की इबादतों से संबंधित है। अल्लाह की इबादत इस्लाम का केंद्र बिंदु है। इस पर प्रत्येक मुसलमान ध्यान देता है कि इन इबादतों की मदद से एक सामूहिक व स्वस्थ समाज बने। दूसरे शब्दों में, मजबूत ईंटों की सहायता से भवन तैयार किया जाए।

इस्लाम में पांच अनिवार्य इबादतें हैं। जैसा कि पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने कहा है- इस्लाम के पांच स्तंभ हैं। इसकी घोषणा करना कि सिवाय अल्लाह के और कोई पूज्य नहीं है, हजरत मुहम्मद (सल्ल.) उसके पैगंबर हैं। नमाज कायम करना, जकात अदा करना, रमजान के रोजे रखना और सामर्थ्य होने पर हज अदा करना। "एक दूसरे अवसर पर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) से इस्लाम की परिभाषा पूछी गई तो उन्होंने इन पांचों स्तंभों के नाम लिए। केवल स्तंभ ही भवन नहीं होते बल्कि वे भवन को टिकाए रखने में मदद करते हैं। जो इस्लाम को सिर्फ धार्मिक कर्मकांडों में सीमित करना चाहते हैं, यह उनकी भूल है। वे इस्लाम की प्रकृति व उद्देश्य को समझ नहीं पा रहे हैं। इसकी इबादतों का उद्देश्य, अर्थ इबादत करने वाले के चरित्र को अल्लाह की

इच्छानुसार ढालना। "इस्लाम के पांच स्तंभ" अल्लाह की इबादत करने का न्यूनतम पैमाना है। अल्लाह को राजी करने के लिए नियमानुसार कोई भी कर्म इबादत माना जाएगा। दान-पुण्य करने के लिए असीमित मार्ग खुले हैं।

लोगों से मुस्कराते हुए मिलना, रास्ते की रुकावटों को दूर करने- जैसे कर्म हजरत मुहम्मद ने कर के दिखाए जो इबादत में शामिल होते हैं। नेकी के लिए आंतरिक इच्छा से वशीभूत होकर किए गए कार्य ही इबादत हैं। अब हम संक्षेप में पांचों स्तंभों का वर्णन करेंगे।

शहादत- "मैं गवाही देता हूं कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं हैं और (हजरत) मुहम्मद (सल्ल.) उसके पैगंबर हैं।" यह साधारण वक्तव्य इस्लाम का पासवर्ड है। दो लोगों के समक्ष गंभीरता से इसका उच्चारण करना इस्लाम स्वीकार करने की औपचारिक घोषणा है। यह कलिमा नमाज के लिए दिए जाने वाले आमंत्रण (अजान) में हर बार दोहराया जाता है। यह जुबानी स्वीकार्य की औपचारिकता के बजाय इसकी घोषणा है कि अल्लाह को अल्लाह स्वीकार लिया गया है। इसका अर्थ यह है कि आप उस सर्वशक्तिमान को अपने जीवन का आकार देने वाला और मार्गदर्शक मान लिया है। इसके अलावा किसी के भी प्रभाव, चाहे वे लोग हैं, चीजें या आंतरिक भावनाएं या इच्छाएं, इन सबके प्रभाव में आने से इंकार कर दिया। जिस व्यक्ति ने यह स्वीकार लिया कि मुहम्मद (सल्ल.) अल्लाह के पैगंबर हैं, उसने यह शपथ ले ली है कि वह हजरत मुहम्मद (सल्ल.) की शिक्षाओं व निर्देशों का पालन करेगा तथा उन्हें प्राप्त दैवीय स्रोतों के प्रति आभार प्रकट करेगा। इस्लामी साहित्य में सदियों से शहादत पर लिखा जा रहा है, जिसका अर्थ यही निकलता है कि- अल्लाह के सिवा कोई इबादत के लायक नहीं है, मुहम्मद (सल्ल.) उसके पैगंबर हैं।

नमाज- नमाज इस्लाम का धार्मिक संस्कार है, जो इबादतों में प्रमुख स्थान रखती है। यह अलग प्रकार की इबादत है, जो बंदे को खुदा से सीधा संवाद सिखाती है। इसे कहीं भी किसी भी स्थान पर, किसी भी समय अपने रब के समक्ष अदा किया जा सकता है। इसके द्वारा अल्लाह से दिशा निर्देश की याचना, क्षमा याचना की जा सकती है। नमाज के निर्देश कुरआन में दिए गए हैं तथा इस पूजा पद्धति को दूसरे धर्मों ने भी सराहा है। यह एक ऐसा धार्मिक

संस्कार है, जिसमें शरीर व आत्मा पूरे सामंजस्य के साथ रब को याद करते हैं। यह दिन में ५ बार पढ़ी जाती है। अलस्सुबह, दोपहर के समय, दोपहर के बाद, सूर्यास्त के बाद व अंधेरा फैलने के बाद ५ समय अनिवार्य नमाजें सामूहिक रूप से अदा की जाती हैं। घर, मस्जिद, बगीचा, कार्य स्थल सहित किसी भी साफ-सुथरे स्थान पर अकेले में या सामूहिक रूप से नमाज अदा की जा सकती है। सामूहिक नमाजों में चाहे वे पुरुष हों या नारी एक नेतृत्वकर्ता (इमाम) होता है। पांचों नमाजों में से हर एक नमाज कुछ मिनटों में हो जाती है। सिर्फ सामूहिक रूप से होने वाली जुमे की नमाज में कुछ ज्यादा समय लगता है, जिसमें नीति वचन यानी खुत्बा शुरू में पढ़ा जाता है। 'इमाम' कोई पुजारी या पंडित नहीं होता, यह भी जरूरी नहीं कि एक ही व्यक्ति हर वक्त की नमाज पढ़ाए। उसके चयन की योग्यता कुरआन के ज्ञान और उसकी धर्म परायणता पर आधारित होती है। (वह कोई भी हो सकता है, जैसे उद्योगपति, मजदूर, डॉक्टर, शिक्षक या धर्मविद्।)

नमाज पढ़ने के लिए इंसान का पाक-साफ (शुद्ध) होना जरूरी है। इसके लिए वुजू है, जिसमें पहले अच्छे से हाथ धोकर कुल्ली की जाती है, फिर नाक साफ कर चेहरा धोया जाता है। कोहनी तक हाथ व पैर धोए जाते हैं। और हाथ गीला करके सिर व कानों में फिराया जाता है। एक ही वुजू से कई नमाजें पढ़ी जा सकती हैं, लेकिन दोबारा वुजू करना पड़ेगा अगर किसी की नींद लग गई, गैस निकाली या फिर उसने मल, मूत्र का त्याग किया। शारीरिक संबंध स्थापित करने के बाद पाक होने के लिए स्नान जरूरी है। महिलाओं को उनके विशेष दिनों में नमाज से मुक्ति दी गई है। विशेष दिन पूरे हो जाने पर नमाज पढ़ने के लिए स्त्रियों का नहाना जरूरी है, जैसे पुरुषों के लिए वीर्य स्खलन के बाद। इसके बावजूद इंसान किसी भी समय वुजू या बगैर वुजू के अल्लाह का नाम ले सकता है।

हर नमाज में बंदे को अल्लाह के समक्ष पूरी तरह उपस्थित होना होता है। काबा (पैगंबर हजरत इब्राहीम व उनके बेटे इस्माईल द्वारा एक ही अल्लाह की इबादत के लिए निर्मित पहली मस्जिद। इसके आसपास बाद में मक्का शहर आबाद हो गया) की तरफ मुंह करके नमाज पढ़ी जाती है। मक्का की मस्जिदुल्हराम के बीच स्थित काबे के चारों ओर गोलाकार बनाकर, उसकी ओर मुंह करके नमाज पढ़ी जाती है। औरतें पीछे की तरफ होती हैं, यह किसी

आदेश के तहत नहीं बल्कि एक सौंदर्य परक व्यवस्था है, क्योंकि पुरुषों के आगे नमाज पढ़ते समय रुकू के लिए झुकते या सज्दे में माथा जमीन पर टेकते समय स्वयं को असहज महसूस न करें। पूरे विश्व के मुसलमान भी काबे की ओर मुंह करके सीधी पंक्तियों में एक-दूसरे से सटकर नमाज अदा करते हैं।

'अल्लाह अकबर' (अल्लाह सबसे बड़ा है) कहकर नमाज शुरू की जाती है। इसका मतलब यह है कि इबादत करने वाले ने संसार की सारी वस्तुओं से मुंह मोड़कर अपना ध्यान अल्लाह की ओर लगा लिया है। इसमें हर किसी को कुरआन का पहला अध्याय पढ़ना जरूरी है, जो इस तरह है- प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जो सारे संसार का रब (प्रभु, पालनकर्ता) है। बड़ा कृपाशील, अत्यंत दयावान है। बदला दिए जाने के दिन का मालिक है। हम तेरी ही बंदगी करते हैं और तुझी से मदद मांगते हैं। हमें सीधे मार्ग पर चलाना। उन लोगों के मार्ग पर जो तेरे कृपा पात्र हुए, जो न प्रकोप के भागी हुए और न पथभ्रष्ट। (कुरआन- १, १-७) इसके बाद नमाज में कुरआन के दूसरे अंश पढ़े जाते हैं। इस के बाद रुकू में झुकने व सज्दे में धरती पर माथा टेकने के दौरान क्रमशः पढ़ा जाता है- "अल्लाह पवित्र और महान है", तथा "अल्लाह पवित्र और उच्चतर है"। इनके बीच यह भी पढ़ा जाता है- "जो अल्लाह का शुक्र अदा करता है, अल्लाह उसकी सुनता है"। इसके बाद बैठकर अपनी आस्था का प्रमाण दिया जाता है। इसमें हजरत मुहम्मद, हजरत इब्राहीम व उनके वंशजों पर अल्लाह की कृपा बरसने की दुआ के साथ स्वयं के मोक्ष की दुआएं की जाती हैं।

नमाज अनिवार्य वाली हो या रब को राजी करने के लिए इच्छानुसार पढ़ी जाने वाली, दोनों आध्यात्मिक रूप से अपरिमित खजाना हैं। यह हमें आत्मिक शांति, पवित्र भाव और मानसिक संतुष्टि देने के साथ अल्लाह से निकटता का सुखद अहसास देती है। यह आश्चर्यजनक रूप से जीवन की उथल-पुथल को कम कर देती है। निश्चित समय पर दिन भर में पांच समय अनिवार्य नमाज अदा की जाती हैं, जो इंसान को विभिन्न स्तरों पर लाभान्वित करती हैं। जैसे दिन की शुरुआत में भोर के समय अदा की जाने वाली नमाज बंदे को सुखद अहसास की अनुभूति कराने के साथ व्यावहारिक रूप से उसके मस्तिष्क में दिन भर कोई गंदा विचार न आए, इसके लिए तैयार करती है।

जकात- लोक कल्याणकारी कार्यों के लिए धन खर्च करना इस्लाम में बहुत सराहनीय है। मुसलमानों को प्रेरित किया गया है कि वे जन कल्याणकारी कार्यों में जितनी राशि खर्च कर सकते हैं, करें। इसका फलक बहुत व्यापक है। परंतु इस्लाम का तृतीय स्तंभ जकात इस ऐच्छिक दान-पुण्य से अलग है। जकात की अदायगी स्वैच्छिक नहीं, अनिवार्य है और यह बाकायदा हिसाब-किताब करके निकाली जाती है। आम भाषा में अपनी जरूरतें पूरी होने के बाद जो धन साल भर तक जमा रहे तो उसका ढाई प्रतिशत गरीब वर्ग को देना अनिवार्य है। यह दरअसल पूंजी को निष्क्रिय रखने पर लगाने जाने वाले जुर्माने जैसा है। यदि राशि इसी तरह निष्क्रिय रखी गई तो ४० साल में वह पूरी खत्म हो सकती है। इसमें यह संदेश भी निहित है कि अपने धन को बाजार में चलायमान रखिए और उससे हुई कमाई को लोक कल्याणकारी कार्यों में खर्च कीजिए। इसके अलावा अन्य संसाधनों जैसे उद्योग-धंधे, कृषि कार्य, पशुपालन, रियल एस्टेट आदि से प्राप्त लाभ के लिए अलग से नियम निर्धारित हैं।

जकात अमीरों के धन में गरीब का हिस्सा है और न तो यह ऐच्छिक कल्याणकारी कार्य है और न दरियादिली। इस्लामी राज्य में सरकार इसे कर के रूप में वसूल करती है और यह बजट से होने वाली उनकी आय का प्रमुख स्रोत होता है। इसे आम जन हितार्थ चलाई जा रही संस्थाओं को भी दिया जा सकता है या जहां इस्लामी शासन नहीं हो, वहां सीधे जरूरतमंदों को पहुंचाया जा सकता है। (जैसे मुसलमान दुनिया के कई राष्ट्रों में अल्पसंख्यक हैं।) जरूरतमंद गैर मुस्लिमों को भी इसके लाभ पहुंचाए जा सकते हैं।

मुस्लिम समुदाय के सदस्यों में जकात एक मजबूत संबंध स्थापित करती है, जिसके बारे में हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने कहा है- "शरीर के विभिन अंगों की तरह अगर एक को तकलीफ होती है तो बाकी सारे भी उसे महसूस करते हैं।" अरबी में जकात का शाब्दिक अर्थ 'पवित्र करना' है। इसका आशय है कि कोई जरूरतमंदों को अपना धन देकर उसे पवित्र कर लेता है। जकात अदा करने वाला मुसलमान आंतरिक सुख को अनुभूत करता है क्योंकि यह एक तरह का पूंजी निवेश है न कि ऋण।

रमजान (सौम)- चंद्रमा पर आधारित इस्लामी कैलेंडर का नवां

महीना रमजान है। यह ग्रेगरी संबंधी कैलेंडर से ११ दिन छोटा होता है। इसलिए हर साल रमजान ११ दिन जल्दी शुरू हो जाते हैं जिसकी वजह से इंसान को हर ऋतु व मौसम में रोजे रखने का अवसर प्राप्त होता है। रमजान में मुसलमान रोजे रखते हैं और रोजे में सूर्योदय से सूर्यास्त तक कुछ भी खाते या पीते नहीं हैं। इस दौरान दिन में शारीरिक संबंध बनाने की भी मनाही है। रोजे की पवित्रता बरकरार रखने के लिए रोजेदार को क्रोध व दुर्व्यवहार करने से बचने के निर्देश हैं।

रमजान सिर्फ भूखे रहने का महीना नहीं है। इसमें सूर्यास्त होने के बाद खाने-पीने की इजाजत दी गई है। रात को खाते-पीते समय इंसान को संयम बरतने की सलाह दी जाती है। बीमारों, बच्चों, धात्री माताओं सहित बुजुर्गों व कमजोरों को रोजे से छूट दी गई है।

रोजे के दौरान व्यक्ति अपनी रोजाना खाने-पीने की आदतें बदलकर भूख और प्यास को नियंत्रित करने का अभ्यास कर लेता है, इसलिए रमजान उसे जबर्दस्त आत्म-नियंत्रण व इच्छाशक्ति देता है, और वह इंसानियत ही क्या जिसमें आत्म-नियंत्रण न हो। रमजान के दौरान इंसान आत्मिक रूप से समृद्ध होता है, वह अपनी भौतिक आवश्यकताओं से विमुख होकर आध्यात्मिक रूप से संपन्न हो जाता है। यह महीना आध्यात्मिक रूप से नवीनीकरण और स्वयं में नई ऊर्जा भरने का होता है, जैसे पूरे साल के लिए खुद की बैट्री को चार्ज करना। आत्मिक गहराइयों से की गई इबादतें और दान-पुण्य इस माह की विशेषताएं होती हैं। इसी के परिणामस्वरूप अपनी दो ईदों में से एक ईद मुसलमान रमजान के बाद मनाते हैं जबकि दूसरी हज के समय मनाई जाती है। दोनों ईदों की सुबह एक विशेष नमाज अदा की जाती है तथा परिजन व मित्रों के साथ खुशियां साझा की जाती हैं।

हज- इस्लाम अपने पैगंबर इब्राहीम (अ.) के एकेश्वरवादी मिशन से खुद को गंभीरता के साथ जोड़ता है, जिनकी आज्ञाकारिता का उदाहरण इस्लाम का पांचवां स्तंभ हज है। हजरत इब्राहीम (अ.) ने अपने जीवनकाल में अल्लाह की ओर से अनेक परीक्षाओं का सामना भक्तिभाव से किया। इसी तरह की एक परीक्षा में अल्लाह के आदेश पर उन्होंने अपनी पत्नी हगर को इकलौते (उस समय इस्माईल (अ.) का जन्म नहीं हुआ था) मासूम बच्चे के साथ दक्षिण पश्चिमी अरब के एक उजाड़ स्थान पर छोड़ दिया था,

इस विश्वास के साथ कि उनकी सुरक्षा अल्लाह करेगा। भविष्य में मक्का शहर आबाद होने वाले इस स्थान पर जब मां-बेटे के पास खानपान का सामान खत्म हो गया तो मासूम बच्चा प्यास से बिलकने लगा। यह देख हगर परेशान होकर पानी की खोज में इधर-उधर दौड़ने लगीं। इसी बीच वहां चमत्कारिक रूप से जल का एक स्रोत (जमजम) फूट पड़ा। हजरत इब्राहीम (अ.) समय-समय पर उनके हालचाल जानने वहां जाते थे। बाद में उन्हें अल्लाह ने इसी स्थान पर काबा के निर्माण का हुक्म दिया। तब उन्होंने अपने पुत्र इस्माईल की सहायता से अल्लाह की इबादत के लिए पहली मस्जिद 'काबा' के रूप में बनाई और लोगों को वहां हज करने के लिए आमंत्रित किया। इसके अलावा भी उन्होंने अल्लाह की ओर से एक कठिन परीक्षा का सामना कर उसके प्रति पूर्ण निष्ठा का प्रदर्शन किया। यह परीक्षा उनके पुत्र इस्माईल (अ.) के बलिदान की मांग के रूप में थी। इब्राहीम (अ.) ने पुत्र की सहमति से इसे पूरा किया। अल्लाह ने उनकी निष्ठा व धर्म परायणता देख बच्चे की जान बचा ली तथा उसकी जगह भेड़ की बलि हो गई।

हजरत इब्राहीम (अ.) व हजरत इस्माईल (अ.) के समय शुरू हुई धार्मिक तीर्थ यात्रा हज की परंपरा तभी से जारी है। दुर्भाग्य से बाद के समय में लोग मूर्तिपूजक हो गए और अल्लाह की इबादत के लिए बनाए गए इस घर को विभिन्न मूर्तियों से भर दिया। मूर्ति पूजने वाली हर प्रजाति ने एक मूर्ति ली, उसे नाम दिया और काबे में रख दी। तीर्थ यात्रा का उत्सव तब भी मनाया जाता था लेकिन वहां एक अल्लाह की इबादत करने के बजाय यह आमोद-प्रमोद का उत्सव हो गया। शराबखोरी, बुराइयों के साथ वहां नवीन कर्मकांड होने लगे, जैसे नग्न होकर गाते-बजाते हुए काबे की परिक्रमा करना, सीटियां व तालियां बजाना इत्यादि। मक्कावासियों के लिए यह उत्सव आर्थिक रूप से बहुत महत्वपूर्ण था। उनकी अर्थ व्यवस्था इसी पर आधारित थी और साल में इस तरह के दो उत्सव मनाए जाते थेजब उत्तर (अफ्रीका और एशिया) तथा दक्षिण (सीरिया और बायजेंटाइन साम्राज्य से इतर) की ओर आने-जाने वाले काफिले यहां पहुंचते थे। उस समय पाखंडी धर्मगुरु अल्लाह की ओर से बोलने का दावा करते हुए लोगों से उपहार और उनसे वादे किया करते थे।

हजारों साल तक काबे में हजरत इब्राहीम (अ.) के सुपुत्र हजरत इस्माईल (अ.) से उपजी नस्लें यही करती रहीं। तब इस्माईल की

दूरस्थ संतति, अरब के एक प्रभावशाली कबीले 'कुरैश' में हजरत मुहम्मद (सल्ल.) का जन्म ५७० ई. में हुआ। जन्म से पहले उनके पिता का और थोड़े ही समय बाद मां का भी निधन हो गया। तब हजरत मुहम्मद (सल्ल.) की परवरिश उनके दादा ने की और बाद में जब उनका भी देहांत हो गया तो पैगंबर साहब के एक चचा ने उनकी देखभाल की। बड़े होते-होते हजरत मुहम्मद (सल्ल.) अपने पूरे समुदाय में सम्मान व प्रशंसा के पात्र हो गए थे और कम उम्र में ही उन्होंने 'ईमानदार' की उपाधि प्राप्त कर ली थी। २५ साल की आयु में उन्होंने एक धनी और अपने से १५ साल बड़ी विधवा हजरत खदीजा (रदि.) से विवाह कर लिया। हजरत मुहम्मद (सल्ल.) कारोबार के सिलसिले में हजरत खदीजा (रदि.) का कामकाज देखते थे और हजरत खदीजा (रदि.) उनकी चारित्रिक ऊंचाइयों से भलीभांति परीचित थीं। २८ साल का यह एक पत्नीक वैवाहिक बंधन हजरत खदीजा (रदि.) के देहांत तक मजबूती से कायम रहा।

हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने अपने साथियों के साथ कभी मूर्ति पूजा में भाग नहीं लिया, न ही कभी कोई गलत कार्य किए, जो पूर्व इस्लामी अरब (जाहिलियत का युग) में प्रचलित थे। चिंतन-मनन व ध्यान लगाने के लिए वे मक्का के पास स्थित एक पहाड़ की खोह में जाया करते थे। ऐसे ही एक दिन गुफा में अल्लाह के फरिश्ते जिब्राईल आए और पैगंबरी का ईश्वरीय संदेश देने के साथ कुरआन का एक अंश भी उन्हें प्रस्तुत किया। जो यह था- 'पढ़ो, अपने रब के नाम के साथ जिसने पैदा किया, पैदा किया मनुष्य को चिपकने वाली चीज से। पढ़ो, हाल यह है कि तुम्हारा रब बड़ा ही उदार है, जिसने कलम के द्वारा शिक्षा दी, मनुष्य को वह ज्ञान प्रदान किया जिसे वह न जानता था। (कुरआन ९६, १-५) इसके साथ ही हजरत मुहम्मद (सल्ल.) पर कुरआन के अवतरण का सिलसिला भी शुरू हो गया। यह रमजान का महीना था और उस दिन शबे-कद्र थी। इस घटना से हजरत मुहम्मद (सल्ल.) घबरा गए और कांपते, थरथराते हुए घर पहुंचे। उनकी स्थिति देख पत्नी हजरत खदीजा (रदि.) ने ढांढस बंधाई और कहा- 'कसम है उसकी जिसके कब्जे में खदीजा की आत्मा है, मैं दुआ करती हूं कि आप इस राष्ट्र के पैगंबर बनेंगे। आप अपने साथियों पर कृपा करते हो, मेहमान की खातिरदारी करते हो, जरूरतमंदों की मदद करते हो और सच बात कहते हो। अल्लाह आपको कभी अपमानित नहीं होने देगा।'

इसके बाद जिब्रईल बार-बार पैगंबर हजरत मुहम्मद के पास ईश्वरीय संदेश लेकर आते रहे। यहां तक कि सत्य को स्थापित करने और हजरत इब्राहीम (अ.) के पवित्र एकेश्वरवादी धर्म को पुनर्स्थापित करने का उनका मिशन रंग लाने लगा। इसमें मक्का के धनी व प्रभावशाली वर्ग के साथ काबा के मूर्तिपूजकों ने सबसे अधिक बाधाएं खड़ी कीं, जिनका वजूद मूर्ति पूजकों द्वारा दी जाने वाली दान-दक्षिणा पर ही टिका हुआ था। १३ वर्षों तक हजरत मुहम्मद (सल्ल.) व उनके साथियों ने तरह-तरह की रुकावटों व यातनाओं का सामना किया। इसके बाद उन्होंने मदीना में शरण ली, जहां (कुरआन के द्वारा) उन्हें स्वयं की रक्षा करने व अपनी ताकत बढ़ाने की अनुमति दी गई। आखिरकार मुहम्मद (सल्ल.) की सेना ने मक्का को फतह कर लिया और इस्लाम व मुसलमानों के खिलाफ लड़ने वालों के लिए आम माफी की घोषणा की गई। काबे में रखी तमाम मूर्तियां नष्ट कर उसे पाक किया गया और धर्म को उसके पवित्र एकेश्वरवादी स्वरूप में स्थापित किया गया। अपने निर्धारित समय पर हज की तीर्थ यात्रा प्रारंभ की गई और इस्लाम का पांचवां स्तंभ यानी हज हर सक्षम व स्वस्थ मुस्लिम पुरुष, स्त्री के लिए जीवन में एक बार अनिवार्य किया गया।

इन सर्वविदित तथ्यों के बावजूद 'विशेषज्ञ' व 'विद्वतजन' अभी भी हज को 'इस्लाम में मूर्ति पूजा के एक उदाहरण' की तरह प्रस्तुत कर रहे हैं। मुसलमानों को आहत करने के लिए यही एक कार्य काफी नहीं है?

चंद्रमा आधारित कैलेंडर के १२वें माह 'जिलहिज्ज' में हज किया जाता है। यह इब्राहीमी यादगार है, सो इस्लाम की आमद के पहले से जिलहिज्ज प्रचलित था। हज के लिए महिलाएं शरीर ढंकने वाले पूरे वस्त्र पहनती हैं। सिर्फ उनका चेहरा व हाथ खुले रहते हैं। पुरुषों को बिना सिला सफेद लिबास धारण करना होता है। वे शरीर पर दो चादरें लपेटते हैं। पैरों में चप्पल और कमर में बेल्ट, जिसमें बटुआ लगा होता है। यह एक वैश्विक लिबास है, जिसमें सारी दुनिया से आए लाखों मुसलमान हज यात्री एक जैसे दिखाई देते हैं। उस समय उनमें रंग, भाषा, नस्ल, जाति, शिक्षा आदि के भेद समाप्त हो जाते हैं। कठिनाइयों से जूझते, एक-दूसरे की हरसंभव मदद करते, भाईचारे के साथ सब एक ईश्वर की इबादत के रंग में रंगे होते हैं। मानवता की पराकाष्ठा और आस्था की पवित्रता के साथ समस्त मानव परिवार एक है और एक अल्लाह की इबादत

करता है, हज इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस बीच कोई अलगाव नहीं होता है, परिजन और अन्य समूह एक-दूसरे के साथ बंधे रहने के सफल प्रयत्न करते हैं, इसीलिए लाखों की भीड़ में भी कोई गुम नहीं होता।

हजरत इब्राहीम (अ.) की यादगार काबा के आसपास का तवाफ (परिक्रमा), जहां हजरत इस्माईल (अ.) की माता हगर द्वारा अपने पुत्र के लिए पानी की खोज में व्यग्रतापूर्वक दौड़ लगाई गई थी, उन सफा व मरवा की पहाड़ियों के बीच आगे-पीछे तेज-तेज चलना, अरफात की घाटी में इकट्ठे होकर इबादतें व अल्लाह से अनुनय-विनय करना तथा शैतान को कंकरियां मारना जैसी प्रक्रियाएं हज के दौरान की जाती हैं। हजरत इब्राहीम जब अल्लाह के हुक्म से अपने पुत्र इस्माईल की बलि देने जा रहे थे, तब शैतान ने उन्हें तीन जगह रोककर बहकाने के प्रयास किए थे। तब हजरत इब्राहीम (अ.) ने उसे पत्थर मारकर भगाया था। उसी की याद में उन्हीं तीन स्थानों पर हज के दौरान शैतान को कंकरियां मारी जाती हैं। ईदुज्जुहा वाले दिन विशेष नमाज व खुत्बा (प्रवचन) हज का महत्वपूर्ण अंग है। इसके बाद हजरत इब्राहीम (अ.) की परंपरा का पालन करते हुए जानवरों की कुर्बानी (गरीबों के लिए दानस्वरूप, परंतु कुछ भाग परिजनों व मित्रों के लिए भी) की जाती है। जो लोग हज करने नहीं जा पाते, वे अपने-अपने स्थानों पर ईद की नमाज अदा करके कुर्बानी करते हैं।

हज के दौरान मक्का के निकट भारी संख्या में पशुओं की कुर्बानी से प्राप्त मांस उस समय पूरी तरह उपयोग में नहीं लाया जा सकता, इसलिए सऊदी सरकार ने धार्मिक विद्वानों की सलाह तथा जरूरी फतवे के बाद एक मांस पैकेजिंग प्लांट स्थापित कर दिया हैजहां से गरीब व जरूरतमंद इस्लामी देशों को यह मांस पहुंचाया जाता है। इसके अलावा सऊदी सरकार हज के लिए पहुंचने वाले लाखों (२० लाख से अधिक) जायरीन (तीर्थ यात्रियों) के लिए कई तरह की व्यवस्थाएं भी करती हैं ताकि एक निश्चित समय में बहुत बड़ा हुजूम सारी धार्मिक क्रियाएं एकसाथ आसानी से संपन्न कर सके।

इस्लामी नैतिकता

इस्लामी नैतिकता की तुलना ईसाई व यहूदी नैतिकता के साथ की जा सकती है, जिनका वास्तविक रूप तौरैत व इंजील में प्रस्तुत

किया गया है। बाद के दिनों में इन दोनों धर्मों से संबंधित इब्राहीमी नैतिकता को इतना परिवर्तित कर दिया गया कि उस समय की अनैतिकता आज की नैतिकता हो गई। इन अनैतिकताओं को सुंदर शब्दों की पोशाक पहना दी गई, जैसे 'लव', 'गे', 'रिलेशनशिप', 'बॉय-गर्ल फ्रेंड', 'लवर' इत्यादि। यह सोचकर कि शायद इन शब्दों से पुराने गुनाहों पर पर्दा पड़ जाए।

ऐसे अलग-अलग मुद्दों पर चर्चा करने के बजाय इस अध्याय का यह बेहतर उपयोग होगा कि हम इस्लामी नैतिकता के दो प्रमुख स्रोतों से अपने पाठकों को सीधे परिचित करा दें। यह दो स्रोत कुरआन व हदीस (हजरत मुहम्मद के कथन) हैं जिनसे कुछ उद्धरण आगे प्रस्तुत किए गए हैं। बहुत से लोगों के लिए यह नई जानकारी होगी कि पश्चिम के बहुत से पाठक इस्लाम की आत्मा से अपरिचित हैं, क्योंकि तथाकथित विशेषज्ञों ने उन्हें इस धर्म के बारे में कई भ्रामक बातों के द्वारा गुमराह कर रखा है। कई बार हम पढ़ते या रेडियो, टीवी पर सुनते हैं कि कुरआन मुसलमानों को आदेश देता है कि वे गैर मुस्लिमों से झूठ बोलें, उन्हें धोखा दें, उनकी हत्या करें या हजरत मुहम्मद (सल्ल.) एक निर्दयी खलनायक (नऊजुबिल्लाह), अपनी इच्छाओं के आगे नतमस्तक और कामेच्छाओं से वशीभूत इंसान थे। हम ऐसे झूठ और भ्रामक बातों का पर्दाफाश करने के प्रयासों में लगे रहते हैं। इस बाबत कई बार हमारे उत्तर प्रकाशित होते हैं, कई बार लोग क्षमा याचना कर लेते हैं। परंतु इस तरह की भ्रामक व झूठी बातों का सिलसिला जारी रहता है। हमारे द्वारा किए जाने वाले विभिन्न प्रयासों की बदौलत बहुत से लोग इस्लाम की सच्चाई को समझ रहे हैं और जब भी कोई छोटा-सा समूह झूठ और सच में अंतर समझ जाएगा, इस दुष्प्रचार का अंत हो जाएगा, जिसके माध्यम से कई लोग अपना करियर बना चुके हैं।

इस्लामी नैतिकता इसकी सूची नहीं है कि हम क्या करें और क्या न करें, इसका उद्देश्य ऐसे मानव तैयार करना है, जो धरती पर अल्लाह के नायब (प्रतिनिधि) की हैसियत से अपने कर्तव्य समझें और उन्हें पूरा करने को तत्पर हों। नीचे हम संक्षेप में बिना किसी विशेष क्रम के कुरआन व हदीस के अंश दे रहे हैं-

कुरआन का आस्वादन

रहमान के (प्रिय) बंदे वही हैं, जो धरती पर नम्रतापूर्वक चलते हैं और जब जाहिल उनके मुंह आएं तो कह देते हैं- "तुमको सलाम!" जो अपने रब के आगे सज्दे में और खड़े रातें गुजारते हैं, जो कहते हैं कि "ऐ हमारे रब! जहन्नम की यातना को हमसे हटा दे।" निश्चय ही उसकी यातना चिमटकर रहने वाली है। निश्चय ही वह जगह ठहरने की दृष्टि से बुरी है और स्थान की दृष्टि से भी। जो खर्च करते हैं तो न तो अपव्यय करते हैं और न ही तंगी से काम लेते हैं, बल्कि वे इनके बीच मध्यमार्ग पर रहते हैं। जो अल्लाह के साथ किसी दूसरे ईष्ट-पूज्य को नहीं पुकारते और न नाहक किसी जीव को जिस (के कत्ल) को अल्लाह ने हराम किया है, कत्ल करते हैं। और न वे व्यभिचार करते हैं- जो कोई यह काम करे वह गुनाह के वबाल से दो-चार होगा। कयामत के दिन उसकी यातना बढ़ती चली जाएगी। और वह उसी में अपमानित होकर स्थाई रूप से पड़ा रहेगा। सिवाय उसके जो पलट आया और ईमान लाया और अच्छा कर्म किया, तो ऐसे लोगों की बुराइयों को अल्लाह भलाइयों से बदल देगा। और अल्लाह है भी अत्यंत क्षमाशील, दयावान। और जिसने तौबा की और अच्छा कर्म किया, तो निश्चय ही वह अल्लाह की ओर पलटता है, जैसा कि पलटने का हक है। जो किसी झूठ और असत्य में सम्मिलित नहीं होते और जब किसी व्यर्थ के कामों के पास से गुजरते हैं, तो श्रेष्ठतापूर्वक गुजर जाते हैं, जो ऐसे हैं कि जब उनके रब की आयतों के द्वारा उन्हें याद-दिहानी कराई जाती है तो (आयतों) पर वे अंधे और बहरे होकर नहीं गिरते।[१] और जो कहते हैं- "ऐ हमारे रब! हमें हमारी अपनी पत्नियों और हमारी अपनी संतान से आंखों की ठंडक प्रदान कर और हमें डर रखने वालों का नायक बना दे।"

<u>कुरआन (२५, ६३-७४)</u>

और अपने रब की क्षमा और उस जन्नत की ओर बढ़ो, जिसका विस्तार आकाशों और धरती जैसा है। वह उन लोगों के लिए तैयार है, जो डर रखते हैं। वे लोग जो खुशहाली और तंगी की प्रत्येक अवस्था में खर्च करते रहते हैं और क्रोध को रोकते हैं और लोगों को क्षमा करते हैं और अल्लाह को भी ऐसे लोग प्रिय हैं, जो अच्छे से अच्छा कर्म करते हैं। और जिनका हाल यह है कि जब वे कोई खुला गुनाह कर बैठते हैं या अपने-आप पर जुल्म करते हैं, तो

तत्काल अल्लाह उन्हें याद आ जाता है और वे अपने गुनाहों की क्षमा चाहने लगते हैं, और अल्लाह के अतिरिक्त कौन है, जो गुनाहों को क्षमा कर सके? और जानते-बूझते वे अपने किए पर अड़े नहीं रहते। उनका बदला उनके रब की ओर से क्षमादान है और ऐसे बाग हैं जिनके नीचे नहरें बहती होंगी। उनमें वे सदैव रहेंगे। और क्या ही अच्छा बदला है अच्छे कर्म करने वालों का।

कुरआन (०३, १३३-१३६)

याद करो जब लुकमान ने अपने बेटे से, उसे नसीहत करते हुए, कहा- "ऐ मेरे बेटे! अल्लाह का साझी न ठहराना। निश्चय ही शिर्क (बहुदेववाद) बहुत बड़ा जुल्म है।" और हमने मनुष्य को उसके अपने मां-बाप के मामले में ताकीद की है- उसकी मां ने निढाल पर निढाल होकर उसे पेट में रखा और दो वर्ष उसके दूध छूटने में लगे- कि "मेरे प्रति कृतज्ञ हो और अपने मां-बाप के प्रति भी। अंततः मेरी ही ओर आना है। किंतु यदि वे तुझ पर दबाव डालें कि तू किसी को मेरे साथ साझी ठहराए, जिसका तुझे ज्ञान नहीं, तो उसकी बात न मानना और दुनिया में उनके साथ भले तरीके से रहना। किंतु अनुसरण उस व्यक्ति के मार्ग का करना, जो मेरी ओर रुजू हो। फिर तुम सबको मेरी ही ओर पलटना है, फिर मैं तुम्हें बता दूंगा जो कुछ तुम करते रहे होगे।" "ऐ मेरे बेटे! इसमें संदेह नहीं कि वह राई के दाने के बराबर भी हो, फिर वह किसी चट्टान के बीच हो या आकाशों में हो या धरती में हो, अल्लाह उसे ला उपस्थित करेगा। निस्संदेह अल्लाह अत्यंत सूक्ष्मदर्शी, खबर रखने वाला है। ऐ मेरे बेटे! नमाज का आयोजन कर और भलाई का हुक्म दे और बुराई से रोक और जो मुसीबत भी तुझ पर पड़े, उस पर धैर्य से काम ले। निस्संदेह यह उन कामों में से है, जो अनिवार्य और दृढ़ संकल्प के काम हैं। और लोगों से अपना रुख न फेर और न धरती में इतरा कर चल। निश्चय ही अल्लाह किसी अहंकारी, डींग मारने वाले को पसंद नहीं करता। और अपनी चाल में सहजता एवं संतुलन बनाए रख और अपनी आवाज धीमी रख। निस्संदेह आवाजों में सबसे बुरी आवाज गधों की आवाज होती है।"

कुरआन (३१, १३-१९)

तुम में जो बड़ाई वाले और सामर्थ्यवान हैं, वे नातेदारों, मोहताजों और अल्लाह की राह में घरबार छोड़ने वालों को देने से बाज रहने

की कसम न खा बैठें। उन्हें चाहिए कि क्षमा कर दें और उनसे दरगुजर करें। क्या तुम यह नहीं चाहते कि अल्लाह तुम्हें क्षमा करे? अल्लाह बुहत क्षमाशील, अत्यंत दयावान है। निस्संदेह जो लोग शरीफ, पाक दामन, भोली-भाली बेखबर ईमान वाली स्त्रियों पर तोहमत लगाते हैं, उन पर दुनिया और आखिरत में फिटकार है और उनके लिए बड़ी यातना है।

कुरआन (२४, २२-२३)

वफादारी और नेकी केवल यह नहीं है कि तुम अपने मुंह पूरब और पश्चिम की ओर कर लो, बल्कि वफादारी तो उसकी वफादारी है जो अल्लाह, अंतिम दिन, फरिश्तों, किताब और नबियों पर ईमान लाया और माल, उसके प्रति प्रेम के बावजूद, नातेदारों, अनाथों, मोहताजों, मुसाफिरों और मांगने वालों को दिया और गर्दनें छुड़ाने में भी और नमाज कायम की और जकात दी और अपने वचन को ऐसे लोग पूरा करने वाले हैं जब वचन दें, और तंगी और विशेष रूप से शारीरिक कष्टों और लड़ाई के समय जमने वाले हैं, ऐसे ही लोग हैं जो सच्चे सिद्ध हुए और वही लोग डर रखने वाले हैं।

कुरआन (०२, १७७)

मुस्लिम पुरुष और मुस्लिम स्त्रियां, ईमान वाले पुरुष और ईमान वाली स्त्रियां, निष्ठापूर्वक आज्ञा पालन करने वाले पुरुष और निष्ठापूर्वक आज्ञा पालन करने वाली स्त्रियां, सत्यवादी पुरुष और सत्यवादी स्त्रियां, धैर्यवान पुरुष और धैर्य रखने वाली स्त्रियां, विनम्रता दिखाने वाले पुरुष और विनम्रता दिखाने वाली स्त्रियां, सदका (दान) देने वाले पुरुष और सदका देने वाली स्त्रियां, रोजा रखने वाले पुरुष और रोजा रखने वाली स्त्रियां, अपने गुप्तांगों की रक्षा करने वाले पुरुष और रक्षा करने वाली स्त्रियां और अल्लाह को अधिक याद करने वाले पुरुष और याद करने वाली स्त्रियां- इनके लिए अल्लाह ने क्षमा और बड़ा प्रतिदान तैयार कर रखा है।

कुरआन (३३, ३५)

निश्चय ही अल्लाह न्याय का और भलाई का और नातेदारों को (उनके हक) देने का आदेश देता है और अश्लीलता, बुराई और सरकशी से रोकता है। वह तुम्हें नसीहत करता है, ताकि तुम ध्यान दो। अल्लाह के साथ की हुई अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करो, जबकि

तुमने प्रतिज्ञा की हो। और अपनी कसमों को उन्हें सुदृढ़ करने के पश्चात मत तोड़ो, जबकि तुम अपने ऊपर अल्लाह को अपना जामिन बना चुके हो। निश्चय ही अल्लाह जानता है जो कुछ तुम करते हो।

कुरआन (१६, ९०-९१)

तुम्हारे रब ने फैसला कर दिया है कि उसके सिवा किसी की बंदगी न करो और मां-बाप के साथ अच्छा व्यवहार करो। यदि उनमें से कोई एक या दोनों ही तुम्हारे सामने बुढापे में पहुंच जाएं तो उन्हें 'ऊंह' तक न कहो और न उन्हें झिड़को, बल्कि उनसे शिष्टतापूर्वक बात करो। और उनके आगे दयालुता से नम्रता की भुजाएं बिछाए रखो और कहो- "मेरे रब! जिस प्रकार उन्होंने बाल्यकाल में मुझे पाला है, तू उन पर दया कर।"

कुरआन (१७, २३-२४)

आशा है कि अल्लाह तुम्हारे और उनके बीच, जिनसे तुमने शत्रुता मोल ली है, प्रेम-भाव उत्पन्न कर दे। अल्लाह बड़ी सामर्थ्य रखता है और अल्लाह बहुत क्षमाशील, अत्यंत दयावान है। अल्लाह तुम्हें इससे नहीं रोकता कि तुम उन लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करो और उन्हें उनके हिस्से की आर्थिक सहायता पहुंचाओ, जिन्होंने तुमसे धर्म के मामले में युद्ध नहीं किया और न तुम्हें तुम्हारे अपने घरों से निकाला। निस्संदेह अल्लाह हक अदा करने वालों को पसंद करता है।

कुरआन (६०, ०७-०८)

ऐ ईमान वालो! अल्लाह के लिए खूब उठने वाले, इंसाफ की निगरानी करने वाले बनो और ऐसा न हो कि किसी गिरोह की शत्रुता तुम्हें इस बात पर उभार दे कि तुम इंसाफ करना छोड़ दो। इंसाफ करो, यही धर्म परायणता से अधिक निकट है। अल्लाह का डर रखो, निश्चय ही जो कुछ तुम करते हो, अल्लाह को उसकी खबर है।

कुरआन (०५, ०८)

ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! न पुरुषों का कोई गिरोह दूसरे पुरुषों की हंसी उड़ाए, संभव है वे उनसे अच्छे हों और न स्त्रियां स्त्रियों

की हंसी उड़ाएं, संभव है वे उनसे अच्छी हों, और न अपनों पर ताने कसो और न आपस में एक-दूसरे को बुरी उपाधियों से पुकारो। ईमान के पश्चात अवज्ञाकारी का नाम जुड़ना बहुत ही बुरा है। और जो व्यक्ति बाज न आए, तो ऐसे ही व्यक्ति जालिम हैं। ऐ ईमान लाने वालो! बहुत-से गुमानों से बचो, क्योंकि कतिपय गुमान गुनाह होते हैं। और न टोह में पड़ो और न तुममें से कोई किसी की पीठ पीछे निंदा करे- क्या तुममें से कोई इसको पसंद करेगा कि वह अपने मरे हुए भाई का मांस खाए? वह तो तुम्हें अप्रिय होगा ही। और अल्लाह का डर रखो। निश्चय ही अल्लाह तौबा कबूल करने वाला, अत्यंत दयावान है।

कुरआन (४९, ११-१२)

और यदि वे संधि और सलामती की ओर झुकें तो तुम भी इसके लिए झुक जाओ और अल्लाह पर भरोसा रखो। निस्संदेह, वह सब कुछ सुनता, जानता है।

कुरआन (०८, ६१)

न अच्छे आचरण परस्पर समान होते हैं, और न बुरे आचरण। तुम (बुरे आचरण की बुराई को) अच्छे से अच्छे आचरण के द्वारा दूर करो। फिर क्या देखोगे कि वही व्यक्ति, तुम्हारे और जिसके बीच बैर पड़ा हुआ था, जैसे वह कोई घनिष्ठ मित्र हो।

कुरआन (४१, ३४)

क्या तुमने उसे देखा जो दीन को झुठलाता है। वही तो है जो अनाथ को धक्के देता है, और मोहताज के खिलाने पर नहीं उकसाता। अतः तबाही है उन नमाजियों के लिए, जो अपनी नमाज से गाफिल (असावधान) हैं, जो दिखावे के कार्य करते हैं, और साधारण बरतने की चीज भी किसी को नहीं देते।

कुरआन (१०७, १-७)

तबाही है घटाने वालों के लिए, जो नापकर लोगों पर नजर जमाए हुए लेते हैं, तो पूरा-पूरा लेते हैं, किंतु जब उन्हें नापकर या तौलकर देते हैं तो घटाकर देते हैं। क्या वे समझते नहीं कि उन्हें (जीवित होकर) उठना है, एक भारी दिन के लिए, जिस दिन लोग सारे संसार के रब के सामने खड़े होंगे?

कुरआन (८३, १-६)

हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के कथन

तुममें से कोई भी उस वक्त तक ईमान वाला नहीं हो सकता जब तक कि वह अपने भाई के लिए भी वही पसंद न करे, जो अपने लिए पसंद करता है।

जो कोई भी बुराई को देखे, अगर सामर्थ्य रखता हो तो उसे हाथ से रोक दे, अगर वह ऐसा नहीं कर सकता हो तो जुबान से उसे बुरा कहे और यह भी नहीं कर सकता हो तो उसे अपने दिल में बुरा समझे, और यह सबसे कमजोर ईमान का संकेत है।

तुम्हारे अल्लाह ने कहा- ऐ आदम की औलाद, तुम जब भी मुझसे क्षमा याचना करोगे, तो तुमने जो कुछ भी (पाप) किए हों, उनको अनदेखा कर मैं तुम्हें माफ कर दूंगा। ऐ आदम की औलाद, चाहे तुम्हारे गुनाह आसमान में छाए बादलों के बराबर हो जाएं लेकिन तुम मुझसे क्षमा याचना करोगे तो मैं तुम्हें माफ कर दूंगा। ऐ आदम की औलाद, अगर तुम धरती के बराबर गुनाहों का बोझ लेकर मेरे पास आओगे और सच्चे दिल से तौबा (प्रायश्चित) करोगे और मेरे एक होने का स्वीकार करोगे तो मैं तुम्हें माफ कर दूंगा।

अल्लाह तुम्हारी जान और माल नहीं देखता, वह तो तुम्हारे दिल और कर्म देखता है।

लोग कंघे के दांतों की तरह आपस में समान हैं। तुम सब आदम से हो और आदम को मिट्टी से बनाया गया। इसलिए न किसी गोरे को काले पर प्राथमिकता दी गई है, न ही अरबों को गैर अरबों पर, सिवाय पवित्रता के।

ताकतवर वह नहीं है, जो अखाड़े में अपने दुश्मन को परास्त कर दे, बल्कि ताकतवर वह है, जो गुस्सा आने पर उसे बर्दाश्त कर ले।

एक युवा ने पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) से पूछा- ‹दुनिया में सबसे ज्यादा मेरे सद्व्यवहार का अधिकारी कौन है?› पैगंबर (सल्ल.) ने कहा- ‹तुम्हारी मां।› युवा ने पूछा- ‹उनके बाद?› पैगंबर (सल्ल.) ने कहा- ‹तुम्हारी मां।› युवा ने फिर पूछा ‹उनके बाद?› पैगंबर (सल्ल.) ने फिर कहा- ‹तुम्हारी मां।› एक बार फिर युवा ने

पूछा- ‹उनके बाद?› तब हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने उत्तर दिया- ‹तुम्हारा पिता।›

तुममें से बेहतर वे लोग हैं, जो अपनी पत्नियों के साथ नर्मी का बर्ताव करते हैं, और मैं तुम सबसे बेहतर हूं।

हजरत मुहम्मद (सल्ल.) से किसी ने पूछा- क्या एक मुस्लिम बुजदिल हो सकता है?› आप (सल्ल.) ने जवाब दिया- ‹हो सकता है।› ‹ क्या एक मुस्लिम कंजूस हो सकता है?› आप (सल्ल.) ने कहा- ‹हो सकता है।› लेकिन जब उनसे पूछा गया कि ‹क्या एक मुस्लिम झूठा हो सकता है?› तो आप (सल्ल.) ने कहा- ‹नहीं, कभी नहीं।›

तेज गर्मी के दिनों में एक व्यक्ति को कुएं के किनारे एक प्यासा कुत्ता दिखा। वह पानी तक पहुंच नहीं सकता था। उस व्यक्ति ने कुत्ते को देखकर सोचा कि ‹इसे भी मेरी तरह प्यास लगी है।› वह व्यक्ति कुएं में उतरा और अपने जूते में पानी भरकर लाया। यह पानी उसने कुत्ते को पिला दिया। इससे अल्लाह ने खुश होकर उसके तमाम गुनाह बख्श दिए।

दिखावा करने वाले की तीन पहचान होती है। जब भी वह बोलता है तो झूठ बोलता है, वादा करके तोड़ देता है और जब भी उस पर भरोसा किया जाए, वह उसे भी तोड़ देता है।

अल्लाह कहता है- जब मेरा बंदा मेरी तरफ एक बालिश्त बढ़ता है तो मैं उसकी तरफ एक हाथ बढ़ता हूं, जब वह मेरी तरफ एक हाथ बढ़ता है तो मैं उसकी तरफ एक बांह भर बढ़ता हूं और जब वह मेरी तरफ एक बांह भर बढ़ता है तो मैं उसकी तरफ दो बांह भर बढ़ता हूं और जब वह मेरी तरफ चलकर आता है तो मैं उसकी तरफ दौड़कर आता हूं।

जिब्रईल ने मुझे बार-बार पड़ोसी का ख्याल रखने की बात कही। इतनी बार कही कि मुझे शक होने लगा, कहीं अल्लाह तआला पड़ोसी को वारिसाना हक में तो शामिल नहीं करने वाला है।

कयामत के दिन एक आवाज सुनाई देगी- ‹कहां हैं वे नेक बंदे जो दूसरों को माफ कर दिया करते थे? अपने रब के सामने आओ और अपना इनाम हासिल कर लो। उस दिन हर माफ कर देने

वाला जन्नत में दाखिल होगा।

ए अल्लाह! मैं आपकी पनाह चाहता हूं गुनाहों और दुखों से। आपकी पनाह चाहता हूं मैं कायरता और कंजूसी से। और मैं आपकी पनाह चाहता हूं कर्ज से व लोगों के कब्जे में आने से।

दो पक्षों के बीच किसी घृणास्पद कार्य का पटाक्षेप हो चुका हो, उसके बाद उसका प्रचार किया जाए, तो निश्चित ही अल्लाह उन्हें इसकी सजा देगा और उन्हें पता भी नहीं चलेगा कि यह किस अपराध की सजा है।

शराब सारी बुराइयों की मां है।

अल्लाह के मानने वाले के लिए नफा ही नफा है। अगर उसे अच्छी चीजें मिलती हैं तो वह रब का शुक्र अदा करता है, जो उसके लिए बेहतर है और इसी तरह जब वह मुसीबत में पड़ता है, तो सब्र करता है, यह भी उसके लिए बेहतर है।

मौत के बाद आदम की संतान का ताल्लुक इस दुनिया से पूरी तरह खत्म हो जाता है। सिवाय तीन चीजों के (जो मरने के बाद भी उस तक पहुंचती रहती हैं)- कोई चिरस्थायी जन कल्याणकारी कार्य, उपयोगी ज्ञान, जिसे दूसरे भी लगातार सीखते रहें और एक नेक औलाद जो उसके लिए सदैव दुआ करती रहे।

कयामत के दिन जब कोई साया न होगा, तब सात लोग अल्लाह के साए में रहेंगे- ईमानदार नेतृत्वकर्ता, वह युवा जिसने अपनी जवानी यादे-इलाही में गुजार दी, वह व्यक्ति जिसका दिल मस्जिद में लगा रहता था, दो भाई (या बहनें) जिनमें सिर्फ अल्लाह के लिए भाईचारा हो, वह व्यक्ति जो एकांत में अल्लाह को आंसुओं के साथ याद करता हो, ऐसा युवक जिसे सुंदर महिला संबंध बनाने का आमंत्रण दे और वह यह कहकर इंकार कर दे कि 'वह अल्लाह से डरता है,' और वह व्यक्ति जो ऐसी खामोशी से दान करता हो कि उसके बाएं हाथ को पता नहीं चलता कि दाएं हाथ ने क्या दिया।

जिस किसी ने भी कच्ची प्याज और लहसुन खाई हो, उसे सामूहिक नमाज अदा करने मस्जिद में न आना चाहिए। (क्योंकि इनकी तेज बदबू से दूसरे लोगों को परेशानी हो सकती है।)

अल्लाह के हुक्मों को मानने और न मानने वालों की मिसाल

यात्रियों के उस समूह जैसी है, जो एक जहाज में यात्रा कर रहे थे। कुछ यात्री जहाज के ऊपरी हिस्से में थे, तो कुछ जहाज की तल मंजिल में। जब तल मंजिल वालों को पानी की जरूरत पड़ी तो वे ऊपर वाली मंजिल में पहुंचे और उन्होंने कहा- 'हम जहाज के पेंदे में एक छेद कर लेते हैं, जिससे पानी सीधे वहीं से प्राप्त कर सकते हैं।' अगर ऊपर की मंजिल वालों ने इसकी अनुमति दे दी तो वे सब तबाह हो जाएंगे और अगर उन्होंने नीचे की मंजिल वालों को ऐसा करने से रोक दिया तो सब सुरक्षित रहेंगे।

ऊपर (दान करने) वाला हाथ, नीचे वाले हाथ से बेहतर होता है।

हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने कहा- 'अपने भाई की मदद करो, चाहे वह भलाई करे या बुराई।' लोगों ने कहा- 'हम (यह तो समझ गए कि) उसकी मदद करें, जब वह भलाई करे, लेकिन हम उसकी तब मदद कैसे कर सकते हैं, जब वह बुराई का काम करे?' हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने उत्तर दिया- 'उसे बुराई के काम करने से रोक कर, यही तो उसकी सच्ची मदद है।'

राष्ट्रों के तबाह होने का एक बड़ा कारण (न्याय में पक्षपात) रहा। उनमें जब कभी प्रभावशाली लोगों की संतानें अपराध करतीं तो उन्हें छोड़ दिया जाता, लेकिन जब सामान्यजन कोई अपराध करते तो उन्हें सजाएं दी जातीं।

दुनिया के काम ऐसे करो, जैसे तुम्हें यहां हमेशा रहना है, और मौत के बाद वाली दुनिया के लिए काम ऐसे करो, जैसे कल तुम्हें मौत आने वाली है।

कुछ गरीब मुस्लिमों ने हजरत मुहम्मद (सल्ल.) से शिकायत की कि- 'धनवानों को (आखिरत में) हर तरह के इनाम मिलने वाले हैं, जैसी नमाज वे पढ़ते हैं, वैसी ही हम भी पढ़ते हैं, जैसे रोजे वे रखते हैं, वैसे ही हम रखते हैं और वे धन खर्च करके भी पुण्य कमाते हैं (इसमें हम उनकी बराबरी नहीं कर सकते)।' हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने कहा- 'तुम्हारे पुण्य कमाने के लिए भी अल्लाह ने चीजें बनाई हैं? अल्लाह की हर इबादत पुण्य कमाने के लिए है। उसका शुक्र अदा करना पुण्य है। यह कहना कि उसके सिवा कोई पूज्य नहीं है, पुण्य है। भलाई के काम करना और बुराई से दूर रहना पुण्य है और तो और जब भी तुम अपनी पत्नी के साथ संसर्ग करो, यह भी पुण्य है।' उन्होंने (आश्चर्य से) पूछा-

'कोई अपनी पत्नी के साथ यौनिच्छा पूरी करे और उसे इसके लिए पुण्य मिले?' पैगंबर (सल्ल.) ने कहा- 'क्या तुम यह (नहीं) सोचते कि अगर वह अवैधानिक रूप से अपनी कामेच्छा पूरी करता तो गुनाहगार होता? इसी तरह जब वह अपनी यौनिच्छा वैधानिक रूप से पूरी कर रहा है तो उसे इसका पुण्य मिलेगा।'

हजरत मुहम्मद (सल्ल.) से (इबादत करने में) श्रेष्ठ अवस्था के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा- '(अल्लाह का) ऐसा ध्यान करो, जैसे तुम उसे देख रहे हो, या तुम उसे नहीं देख रहे हो तो वह तुम्हें देख रहा है।'

अल्लाह की ओर ध्यान लगाओ, तुम उसे अपने समक्ष पाओगे। उसे अच्छे समय में याद रखो, वह तुम्हें बुरे समय में याद रखेगा। जानो कि अगर सारी उम्मत जमा हो जाए और तुम्हें फायदा पहुंचाना चाहे मगर अल्लाह की मर्जी न हो तो नहीं पहुंचा सकती। इसी तरह अगर सारी उम्मत जमा हो जाए और तुम्हें नुकसान पहुंचाना चाहे मगर अल्लाह की मर्जी न हो तो नहीं पहुंचा सकती। और जानो कि सब्र के साथ फतह आती है, दुख के साथ सुख आता है और मुश्किल के साथ आसानी भी आती है।

संदर्भ

११. देखिए अध्याय १ से ३।

१२. यदि अल्लाह लोगों को एक-दूसरे के द्वारा हटाता न रहता तो मठ और गिरजा और यहूदी प्रार्थना भवन और मस्जिदें, जिनमें अल्लाह का अधिक नाम लिया जाता है, सब ढहा दी जातीं। (कुरआन- २२, ४०)

१३. अल मेहदीः (सा.) 'जिसे रास्ता दिखाया गया,' सच्चा नेतृत्वकर्ता। जिनके बारे में चंद अहादीस में है कि प्रलय से पहले वे धरती पर आकर आस्तिकों का नेतृत्व करके उन्हें विजय दिलाएंगे।

अध्याय-५

जीवंत मुद्दे

इस्लाम एक व्यापक धर्म है जो मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को देखता है और केवल इबादत के मामलों पर या इबादतगाहों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि समाज के मामलों को व्यापक रूप में देखता है। इसी समाज का एक हिस्सा मुसलमान भी हैं। स्वाभाविक रूप से वे भी यही प्रयत्न करते हैं कि अपने मूल्य दूसरों के साथ साझा करते हुए मुद्दों, समस्याओं के हल ढूंढे जाएं। इसमें वे सबके साथ बराबर के शरीक रहते हैं।

इस अध्याय में हम कुछ समसामयिक मुद्दों पर इस्लामी दृष्टिकोण प्रस्तुत करेंगे। इसके लिए बानगी के तौर पर चंद विषय चुन लिए गए हैं, जिन्हें सामने रखते हुए सैद्धांतिक बहस और अमूर्त विचार प्रस्तुत करने के बजाय दैनंदिन जीवन के बारे में इस्लामी सोच का अध्ययन किया गया है। इस बाबत हमने निम्न विषयों पर परिचर्चा की है-

1. आधुनिक विश्व व्यवस्था
2. जिहाद (धर्मयुद्ध)
3. परिवार और यौन क्रान्ति
4. बायोमेडिकल नैतिकता जिसमें (ए) प्रत्यारोपण (बी) अंगदान और प्रत्यारोपण (सी) मृत्यु की परिभाषा (डी) इच्छा मृत्यु और (ई) जेनेटिक इंजीनियरिंग।

आधुनिक विश्व व्यवस्था

साम्यवाद (कम्युनिज्म) के (विशेषकर रूस में –अनु.) असफल हो

जाने पर एक नवीन वैश्विक व्यवस्था उपस्थित हो गई। हालांकि साम्यवाद के बुरी तरह ध्वस्त हो जाने का दुनिया के लोगों को गुमान भी नहीं था लेकिन इस्लामी साहित्य में अनेक दशकों से साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों की ही आलोचना की जा रही थी। मुस्लिम विद्वानों ने दोनों व्यवस्थाओं का वास्तविक मूल्यांकन कर बता दिया था कि इनमें कहां घातक कमियां हैं और यह इस्लाम की स्वतंत्र व्यवस्थाओं का मुकाबला नहीं कर सकेंगी।

यहां यह परिणाम निकालना अनावश्यक है कि साम्यवाद का अवसान पूंजीवाद की मजबूती का प्रमाण है। यह दोनों ही भौतिकवादी व्यवस्थाएं त्रुटिपूर्ण हैं। इनकी असफलता का एक बड़ा कारण है कि ये उस विशेष जन समुदाय के लिए नाकाफी हैं, जो भौतिकवाद से इतर की सोच रखता है। हालांकि दोनों विचारधाराएं एक-दूसरे से विपरीत हैं, फिर भी दोनों यह गलत बात मानते हैं कि व्यक्ति और समाज आपस में संघर्षरत हैं। इसीलिए साम्यवाद ने समाज के लिए व्यक्ति की बलि चढ़ा दी। तो समाज क्या है? एक-एक व्यक्ति को जोड़कर बनाई गई इकाई,सो एक व्यक्ति को मिटाया तो सारासमाज ध्वस्त हो गया।

दूसरी तरफ पूंजीवाद व्यक्ति को समाज के आदर्शों से बचा कर रखता है।इसका परिणाम यह हुआ कि लोग स्वार्थी हो गए और जब इसे व्यापक स्वीकृति मिली तो अनेक रूप उजागर हो गए, जैसे वर्गवाद, कॉर्पोरेटवाद, राष्ट्रवाद, जातिवाद, गुलामी और साम्राज्यवाद आदि। पूंजीवाद की यह बुनियादी सोच है कि पूंजी को बगैर किसी सीमा के बढ़ते रहना चाहिए, और जब स्थानीय बाजार सिकुड़ जाए तो समंदर पार की तीसरी दुनिया में बाजार तलाशे जाए।यह निहायत ही घटिया विचार है कि समाप्त होने वाले उपग्रह पर हमेशा रहने वाली और बढ़ती रहने वाली पूंजी की बात की जाए।

भौतिकवाद से जुड़ा अकूत डॉलर्स (धन) प्राप्त करने का ज्वर, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं, बल्कि ऐशो-आराम और विलासिता की पूर्ति के लिए है। इसके लिए प्राकृतिक स्रोतों को तेजी से दोहन कर उन्हें खत्म किया जा रहा है। इसमें तीसरी दुनिया के संसाधनों का विशेष रूप से शोषण करने की मानसिकता शामिल है, जहां विपुल प्राकृतिक संपदा के साथ सस्ते मजदूर भी उपलब्ध हैं। अधिकतर यह प्रयत्न किए जा रहे हैं कि तीसरी दुनिया

से कच्चा माल प्राप्त कर तैयार माल उन्हें ही ऊंची कीमतों पर बेचा जाए। इसके लिए योजनाबद्ध ढंग से उन्हें ऐसी परियोजनाएं भी नहीं बनाने दी जाती हैं कि वे स्वयं निर्माण व उत्पादन कर लें। उन्हें तो पहली दुनिया से होने वाले आयात पर ही निर्भर रहना लाजिमी होता है। इस चक्र में कहीं तीसरी दुनिया, विशेषकर उसकी क्रय शक्ति की समाप्ति ही न हो जाए, इस इद्देश्य से उन्हें कर्ज के रूप में नई पूंजी दी जाती है।

दुख इस बात का है कि इस मदद का बहुत कम उपयोग गरीबों के लिए होता है, अधिकतर स्थानीय धनी-मानी गिरोह और हुक्मरां तबका इसे हड़प कर जाता है। इस तबके का सभी स्रोतों पर आधिपत्य होता है। यह जन चेतना को पनपने नहीं देते, जिससे कि खतरनाक हद तक बढ़ रहे भ्रष्टाचार का पता ही नहीं चले, जो प्रशासक वर्ग में (इस्लामी दुनिया के भी) विद्यमान है। इस तरह से दो विरोधाभास समझ में आते हैं। प्रथम यह कि मध्य पूर्व के बहुत से देशों में जितना पैसा डाला जाता है, उतना ही वे कर्जों में डूबते जाते हैं। इसके अलावाविश्व की बड़ी लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं द्वारा दूसरा बड़ा विश्वासघात यह किया जाता है कि जब भी मध्य पूर्वके देश लोकतंत्र की ओर बढ़ते हैं, ये लोकतांत्रिक शक्तियां तानाशाह के समर्थन में खड़ी हो जाती हैं। वहां के लोकतांत्रिक माहौल को तानाशाही की ओर मोड़ दिया जाता है। ऐसे में स्वायत्तता संबंधी प्रयासों को असफल करने के हरसंभव प्रयत्न किए जाते हैं, यहां तक कि फौजी ताकत का भी सहारा ले लिया जाता है।

पश्चिमी दखलंदाजी का स्पष्ट उद्देश्य यह होता है कि बाहरी पूंजी की शोषण क्षमता बहाल रहे और तीसरी दुनिया के लोगों को विरासत में अधिक कर्ज मिले, जिसे अदा करने की क्षमता उनमें नहीं रहे। जब भी कभी इस बाबत कोई आंदोलन उठता है, तो उसे बलपूर्वक दबा दिया जाता है। पश्चिमी राजनेता इन आंदोलनों का इस प्रकार कुचल दिया जाना न्यायपूर्ण ठहराते हैं और ऐसा माहौल बनाया जाता तथा प्रचार किया जाता है कि ये लोग स्वयं अपना नुकसान ही कर रहे हैं और आक्रामक होकर स्वयं को हानि पहुंचा रहे हैं। अब तक तो इस प्रकार के लोगों को साम्यवादी कहकर नकारा जाता था लेकिन साम्यवाद की समाप्ति के बाद अब इसे इस्लामिक फंडामेन्टलिज्म (इस्लामी कट्टरपंथ) कहा जाने लगा है।

इस सिलसिले में अति व्यापक प्रचार माध्यम जो बड़े पूंजीवादियों

के कब्जे में हैं, उनका उपयोग जनभावनाओं को प्रभावित करने में भरपूर तरीके से किया जाता है। अभी तक पश्चिम की जनता बगैर संदेह के इस प्रलोभन को निगलती रही है, बल्कि बिना संदेह किए अपने निति नियामकों का समर्थन भी करती रही। सिर्फ यही उनका कुसूर और सादगी नहीं है बल्कि पूंजी की इस भूख को वे समझ नहीं सके कि यह केवल तीसरी दुनिया तक ही सीमित नहीं है, यह तो खुद अपने लोगों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करते हैं। पूंजी को और अधिक पूंजी और डॉलर्स को और अधिक डॉलर्स में बदलना ही इनका एकमात्र ध्येय है। इससे अमेरिका में ही बेरोजगारी बढ़ गई क्योंकि कारखानों को ऐसे स्थानों पर स्थानांतरित कर दिया गया जहां सस्ते मजदूर मिल सकें और सस्ते दामों पर पक्का माल तैयार हो सके। यही तैयार माल जब अमेरिका पहुंचे तो वहां भी सस्ते दामों पर बेचा नहीं जा सके।

इस प्रकार का बे-लगाम पूंजीवाद अनिश्चित काल तक नहीं चल सकता। एक दिन इसकी समाप्ति होनी तय है, इसके प्रमाण भी मौजूद हैं जिनकी अनदेखी की जा रही है। सोने के अंडे देने वाली तीसरी दुनिया की दोनों बत्तखें और स्रोत ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहने वाले। कोई आमूलचूल परिवर्तन यदि नहीं होता, तो शायद यह धरती भी चिरस्थायी नहीं रहेगी।

जरूरत केवल माहौल बदलने की ही नहीं है, बल्कि हृदय परिवर्तन की भी है। जब तक भौतिकवाद का दबदबा है, तब तक ऐसी कोई उम्मीद नहीं रखी जा सकती कि केवल साधारण उपचार काम करेगा, वह इस सिलसिले को रोक नहीं पाएगा। जब तक हम और आप, उत्तर बनाम दक्षिण, शोषक बनाम शोषित, अमीर बनाम गरीब, सफेद बनाम काले तथा मालिक बनाम गुलाम लोगों के मध्य संघर्ष बाकी रहेगा, तब तक भविष्य से कोई उम्मीद नहीं लगाई जा सकती। अंत में मानवता का जहाज तो डूबेगा ही, इस पर सवार अमीर और गरीब और समस्त साधन संपन्न भी डूब जाएंगे।

यह संदेहास्पद है कि वैश्विक स्तर के राजनेता और पूंजीधारी स्वयं में आमूलचूल परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक दूरदृष्टि, सोच और प्रतिभा रखते हैं। खेदजनक यह है कि ये लोग अपनी अंधी लालसा में इंसानियत को रसातल तक धकेल कर ही दम लेंगे। इसके लिए एक बहुजन आंदोलन की आवश्यकता है, जो आमजन को समझा

सके कि नया रास्ता तलाश करना जरूरी है, तब ही राजनेता या तो बदलेंगे या रास्ते से हट जाएंगे।

अब इन हालात में इस्लाम को क्या करना चाहिए। इस्लामी विद्वान और विचारक (आतंकी और उग्रवादी नहीं, जिनका मुखौटा मीडिया ने हर इस्लामी सोच वाले पर चढ़ा दिया है।) अनेक दशकों से इस तथ्य पर विचार कर रहे हैं कि इस्लामी शरीअत के अनुसार दुनिया की समस्याओं का कोई ऐसा उपचार सुझाया जाए जो पूर्व के ढांचे की नकल नहीं हो और जो केवल मुसलमानों के लिए ही नहीं हो बल्कि पूरी इंसानियत की भलाई के लिए हो, जिससे इस सिकुड़ती जा रही दुनिया को भी बचाया जा सके, अन्यथा सभी की एक ही नियति होगी। इसके मुख्य बिंदू निम्नानुसार हैं:

मानव के ऊपर अधिकार होना

मनुष्य ही प्रधान व्यक्ति नहीं है वह तो एक सर्वशक्तिमान, सर्वव्याप्त प्रधान के सामने उत्तरदायी है। उसे अंत में हिसाब देना होगा, जैसा कि दोस्तोवस्की ने लिखा है कि अगर अल्लाह को तख्त से उतार दिया जाए तो हर चीज मुमकिन हो सकती है और उसे औचित्य प्रदान किया जा सकता है। व्यक्ति जब अल्लाह को भूल जाए, तब स्वयं की ही पूजा करने लगता है। वास्तविक उसूल यह है कि मनुष्य, अल्लाह का नायब (उप मुखिया) बन कर रहे, उसके आदेशों का अनुपालन करे। जिससे वह अल्लाह की मर्जी के अनुकूल संसार चलाए, न कि मनमानी करे। विज्ञान अभी अधूरा होकर बचपन के दौर में है और मनुष्य स्वयं की अकड़ के अनुसार भी संसार को नहीं चला सकता...

काश कि मनुष्य समझ जाए...

वस्तुओं का स्वामित्व

दुनिया को पैदा करने वाला अल्लाह ही समस्त सृष्टि का मालिक व स्वामी है। हमारा स्वामित्व द्वितीय है। हम अपनी दौलत को जायज और वैधानिक तरीके से बढ़ाने के लिए स्वतंत्र हैं, इसे याद रखना चाहिए कि दौलत अपना स्वत्व ही नहीं रखती बल्कि जवाबदार भी है। दौलत का मकसद केवल बढ़ते रहना ही नहीं है। उसका समाज के प्रति उत्तरदायित्व भी है। साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों की ही सोच यह है कि व्यक्ति और समाज के बीच द्वन्द्व है।

ऐसा इस्लाम का मानना नहीं है। यहां दोनों की बराबरी और इंसाफ के महत्व का संतुलन है। यह संतुलन ताकत के बल पर स्थापित नहीं रखा जाता, वरन् अल्लाह की खुशी हासिल करने की आंतरिक इच्छा से वशीभूत होकर किया जाता है। अल्लाह हमेशा ही मौजूद है, यह सच्चाई है, लेकिन भौतिकवादी दृष्टिकोण से यह बात अप्रासंगिक व अर्थहीन है।

पूंजीवाद व साम्यवाद की इस संयुक्त सोच का इस्लाम में कोई स्थान नहीं है कि व्यक्ति और समाज में अवश्यंभावी द्वंद्व है। इस्लाम के अनुसार इनके बीच साम्य और ऐसा संतुलन है जो सबके साथ समान रूप से न्याय कर सके। यह संतुलन कानून के सख्त हाथों से कायम नहीं रखा जा सकता बल्कि यह तो अल्लाह को राजी करने की दृढ़ इच्छाशक्ति से फलीभूत हो सकता है, जिससे एक नैसर्गिक आनंद प्राप्त होता है।

इस्लाम की मान्यता है कि अमीरों की दौलत में गरीबों का भी हक है और नई वैश्विक व्यवस्था में इसे दुनिया भर में ले जाया जा सकता है। आजकल समाज इस कदर एक-दूसरे पर निर्भर है कि कि कोई इंसान अकेला नहीं रह सकता है, चाहे वह बहुत दौलतमंद हो या अति दरिद्र ही क्यों न हो। लेकिन वास्तविक मूल्यों से रहित शिक्षा, आदर्शविहीन मीडिया की लहरों से प्रभावित या अन्याय को बर्दाश्त करते हुए नहीं रहा जा सकता।

दूसरे खलीफा हज़रत उमर (रदि.) ने चौदह सौ साल पहले यह घोषणा कर दी थी कि यदि कोई व्यक्ति गरीबी के कारण मृत्यु को प्राप्त हो, तब उस बस्ती के तमाम बाशिन्दों से तावान (फिरौती) वसूल किया जाए और यह माना जाए कि उस व्यक्ति को तमाम लोगों ने मार डाला है। पैगंबर साहब (सल्ल.) का यह विचार है कि पूरा समाज एक जिस्म की तरह है, यदि कोई अंग तकलीफ पाता है, तब सभी को तकलीफ होती है। हर नागरिक को जीने का अधिकार है। उसे कम-से-कम इतने साधन तो मिलें कि उसका भरण-पोषण आसानी से हो जाए। चूंकि भीख मांगने को हतोत्साहित किया गया है, इसलिए रोजगार पाना एक व्यक्ति का अधिकार है। श्रम बचाने वाली टेकनोलॉजी मान्य है क्योंकि मजदूर कम मिल पाते हैं लेकिन मशीनीकरण इतना अधिक न हो कि मजदूर बेकार हो जाएं। मशीन पर व्यक्ति को तरजीह दी जानी चाहिए, इस बाबत नियम सार्वजनिक भलाई के लिए हो, न कि व्यक्तिगत भलाई के

लिए। तकनीकी उन्नति को भी मजदूर का साथ देना चाहिए ताकि दोनों के साथ से बेहतर नतीजा निकाला जाना संभव हो। मजदूरों को इतना प्रोत्साहन दिया जाए कि वे कंपनी के शेयर्स या अंश खरीद सकें, जिससे कंपनी में उनको भी हिस्सेदारी प्राप्त हो, जिससे पूंजी का एकतरफा ध्रुवीकरण न हो सके।

इस्लाम का दूसरा उसूल यह है कि दौलत से दौलत पैदा नहीं की जानी चाहिए, उसे किसी उत्पादन से जुड़ना चाहिए। इसी वजह से इस्लाम ने ब्याज को नाजायज करार दिया है। ब्याज से बचने बाबत बहुत कुछ लिखा जाता रहा है, यहां तक कि ब्याजमुक्त बैंकिंग शुरू हो गई है जो यूरोप और अमेरिका जैसे मुल्कों में सफल भी हुई है।

मनुष्य की समानता

सभी इंसान एक ही बाप-मां (आदम व हौवा) की औलाद होकर समान हैं। यह तथ्य बचपन से ही बच्चों को समझाना चाहिए, जिससे उनमें पैदायशी बराबरी का अहसास कायम हो सके। बदकिस्मती यह रही कि यूरोप और अमेरिका में ऐसे प्रमाण एकत्रकिए गए कि श्वेत वर्ण (आर्य) लोगों को दूसरों पर श्रेष्ठता हासिल है। हालांकि अब यह प्रमाणीकरण मृतप्राय हो गया है लेकिन इसकी विरासत कायम है। आज तक चर्चों में जो हजरत ईसा की तस्वीर बनाई जाती है, वह श्वेत वर्णीय और हरी आंखों वाली होती है, न कि सांवले रंग वाली जो जैतून के रंग की तरह हो, जैसा कि फिलीस्तीनी लोगों का होता है।

यूरोप में नस्लवाद पाया जाता है जिसे रद्द करने की भरपूर कोशिश नहीं की जा रही है। अमेरिका में गुलामी का पूर्णरूपेण उन्मूलन नहीं हुआ है जिस कारण हर व्यक्ति को समान नागरिक अधिकार प्रदान नहीं किए जा सके हैं। बराबरी का कोई कानूनी विवरण नहीं हो सकता है, यह तो इन्सान की मानसिक अवस्था में ही होता है।

अभी तक अमेरिका में किसी गोरे आदमी ने काले से माफी नहीं चाही है। रंगभेद के कारण श्वेत लोगों की काफी बदनामी हो चुकी है। (हालांकि दूसरे विश्वयुद्ध के चलते नजरबंदी के दौरान काले जापानी अमेरिकियों से एक बार क्षमा मांगी जा चुकी है।) इस रंगभेद के कारण तनाव उत्पन्न होते रहे हैं, जिसका प्रमाण लॉस एंजेल्स में होने वाले दंगों में देखा गया है।[१४]

जब भी कभी अमेरिका में काले लोगों का उद्धार करने की मुहिम चलती है, तब सीमित प्रोत्साहन मिलने से वह कामयाब नहीं होती है। गोली चलाना या डॉलर की अधिकता इस मसले का हल नहीं है। जब तक यह वैचारिक बदलाव नहीं आता कि सभी इंसान बराबर हैं, तब तक परिवर्तन नहीं आ सकता है। हमें ऐसी शिक्षा प्रदान करनी चाहिए जिससे हर किस्म के भेदभाव से मुक्ति हासिल हो जाए और मानव को बराबरी और भाईचारायुक्त जीवन मिल जाए।

प्रभावी परिवर्तन के लिए नव उप-निवेशवादी राष्ट्रों को पुनर्शिक्षित कर तीसरी दुनिया के विकास के साथ जोड़ना आवश्यक है। यूरोप के किसानों को प्रदान किया जाने वाला अनुदान इतना होता है, जो तीसरी दुनिया से भुखमरी समाप्त कर सकता है। यूरोप के पूर्व मंत्री और प्रधानमंत्रियों की बैठक में आर्थिक सहायता बंद करने पर राजनीतिक समीचीनता या युद्धनीतिक स्थिति इसी कारण संभव हो सकी है।

आत्म निग्रह की आवश्यकता

वैश्विक स्तर पर मानव के भीतर आत्म निग्रह की प्रवृत्ति तेजी से घटती जा रही है, जिसे बचाए जाने की जरूरत है। हालांकि मनुष्य और पशु में बहुत फर्क है, फिर भी मनुष्य की मानसिक स्थिति को बिगाड़कर रख दिया गया है। एक नौजवान ने गुजरती हुई कारों में सवार लोगों को गोलियों से भून डाला और जब उसे गिरफ्तार किया गया, तब उसका उत्तर था कि "वह किसी को कत्ल करने की भावना को महसूस करना चाहता था।" यह एक अकेली मिसाल नहीं है। सांख्यिकी के आंकड़े बताते हैं कि अपराध अब आवेग के कारण विध्वंसक हो गए हैं। हम जो समाचार पढ़ते या खबरें देखते हैं, उनसे पता चलता है कि ठोस मूल्यों का अभाव है और स्वयं को रोके रखना मुश्किल हो गया है, इसलिए समाज में तबाही मची हुई है।

शिक्षा और मीडिया की मदद से यह स्थिति बदली जा सकती है। इसके लिए ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो अच्छे और बुरे में फर्क को समझे और यह माने कि हमें एक बड़ी ताकत (हस्ती) को जवाब देना है। जैसा मुसलमान मानते हैं कि एक दिन इंसाफ होगा, तभी ज्यादातर लोग अपने अन्त:करण की आवाज को

सुनेंगे। तब मारधाड़, हिंसा, अश्लीलतातथा उच्छृंखलता को बढ़ावा देने वाले मीडिया महाराजाओं से ईर्ष्या नहीं करेंगे। गलत बातों के बारे में हल्के से सोचना ही उनको बढ़ावा देना होता है। तब हमारे नौजवान पाएंगे कि ऐयाशी और कुकृत्य एक सामाजिक बीमारी हो गई है।

बदकिस्मती यह है कि चंद राष्ट्र अपने नौजवानों का रुझान नंगी ताकतों की तरफ मोड़ रहे हैं, विशेष यह कि जब उनके विरोधी कमजोर हों तब। जब भी कोई नाजुक सा उसूल या आदर्श टूटता है, तब यह सामरिक ताकतें एक ख्याली आक्रमण बताकर हमला करते हैं और जब कुछ नहीं देखते व पाते हैं, तब खुद ही वापस हो जाते हैं। इस हिंसा में मानव जीवन का कोई महत्व नहीं रह जाता है। 1991 के खाड़ी युद्ध के समय एक फौजी लीडर ने कहा कि हमारा काम शव गिनने का नहीं है, मगर वह उस समय निश्चित ही विरोधी पक्ष का वर्णन कर रहा था।

युद्ध और शांति

इस्लाम में युद्ध के नियम बहुत स्पष्ट हैं और स्वयं पैगम्बर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने साफ-साफ बता दिए हैं। इन नियमों के अनुसार युद्ध चाहे वह रक्षात्मक हो या दमन को न्यायिक कारण से समाप्त करना हो, उसमें बेगुनाहों को कतई सताया नहीं जाए और पर्यावरण को प्रदूषित न किया जाए। अत्याचार को रोकने के लिए कुरआन का हुक्म यह है:

यदि मोमिनों में से दो गिरोह आपस में लड़ पड़ें तो उनके बीच सुलह करा दो। फिर यदि उनमें से एक गिरोह दूसरे पर ज्यादती करे, तो जो गिरोह ज्यादती कर रहा हो उससे लड़ो, यहां तक कि वह अल्लाह के आदेश की ओर पलट आए। फिर यदि वह पलट आए तो उनके बीच न्याय के साथ सुलह करा दो, और इंसाफ करो। निश्चय ही अल्लाह इंसाफ करने वालों को पसंद करता है। कुरआन (४९, ०९)

गैर मुस्लिमों के साथ समझौता आवश्यक एवं स्वीकार्य होता है, जैसा कि पैगंबर साहब (सल्ल.) ने मदीना के यहूदियों के साथ किया था। इसमें यह संदेश निहित है कि बाहरी ताकतों के विरुद्ध मिल-जुलकर बचाव करें। इस्लाम पूर्व का एक समझौता और भी है जब पैगंबर साहब ने कबाइलियों से इस प्रकार करार किया था

कि हम उत्पीड़ितों की मदद के लिए साथ रहेंगे। पैगंबर साहब ने फरमाया कि वह इस्लाम पूर्व का समझौता था लेकिन बाद में भी ऐसा कोई अवसर आए तो हम उसमें शामिल होंगे। उनकी फौज को हुक्म दिया गया था कि वह केवल लड़ाकू शत्रुओं से ही युद्ध करेंगे। औरतों, बच्चों और बुजुर्गों को प्रताड़ित नहीं करेंगे। ऐसे गैर मुस्लिम जो उनके मठों में या विहार में इबादत करें, उन्हें नहीं सताया जाए। वृक्षों को काटा या जलाया नहीं जाए। सिर्फ खुराक के लिए ही जानवरों को मारा या जिबह किया जाए, अन्यथा नहीं। जब भी कोई इन उच्चस्तरीय उसूलों की समीक्षा करता है तो लगने लगता है कि इन उत्कृष्ट आदर्शों को आधुनिक समय के युद्ध में भी अपनाया जाना चाहिए। संभवतयः प्रथम विश्वयुद्ध इस तरह का अंतिम युद्ध था, जिसमें यह उसूल था कि फौजें ही आपस में लड़ती रहें। ३० के दशक में हुई स्पेन के सिविल वॉर में और बाद में द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान इस आदर्श को छोड़ दिया गया। कोरिया की जंग में, वियतनाम में और हिरोशिमा व नागासाकी पर एटम बम गिराए गए और कारपेट बमबारी करते हुए इंसानों को ही नहीं मारा गया वरन् जानवरों को, वृक्षों को और भूमि को भी मिटा दिया गया।

चंद लोग यह सोचेंगे कि इस्लामिक आदर्श केवल खाली बातें हैं, जिनका अब कोई औचित्य नहीं है। मुसलमानों और दूसरे लोगों ने इस मसले को दूसरे पहलू से देखा है, क्योंकि अब युद्ध इस कदर विनाशकारी हो गए हैं कि इस विचार को ही समाप्त कर देना उचित होगा। जैसे कि गुलामी प्रथा का उन्मूलन किया गया है, इसी तरह जंग को भी समाप्त कर देना चाहिए कि यह मुद्दा लुप्तप्राय ही हो जाए। नवीन वैश्विक व्यवस्था की घोषणा भारी सैन्य हड़ताल के दौरान हुई। इसमें कुछ नया नहीं था, सिवाय इसके कि एक पक्ष के बजाय दो हो गए।

आज मानव जिस बुलंदी पर पहुंच गया है और दूसरे दो हजारे में दाखिल हो रहा (गया) है, तब नवीन व्यवस्था में जंग को ही उन्मूलित किया जाएगा और शांति कायम रखने के दूसरे उपाय सामने आएंगे। यह कोई स्वप्न के समान भी नहीं है।

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि स्वतंत्र अदालतें राष्ट्रों के बीच के विवाद सुलझा लें? यह तो सच है कि जंग अच्छे-बुरे में भेद नहीं करती। वह तो बस यह बताती है कि विध्वंसक शक्ति किसमें अधिक है।

इंसाफ के लिए आधुनिक ईमानदार अदालतें कायम की जाएं, जो दो समूहों के बीच की असहमति को सुलझा दें। (इसमें संयुक्त राष्ट्र सभा और सुरक्षा परिषद शामिल नहीं हैं।) इसकी कामयाबी केवल एक धुरी पर घूम रही है कि सभ्य राष्ट्र स्वयं ही सभ्यता को अपना लें। यह सच्चाई है और कोई कभी यह नहीं कहेगा कि वह सच्चाई का विरोधी है, लेकिन वे हैं। असल में सच्चाई एक मूल्य है और मौजूदा राजनीति मूल्यों से अनभिज्ञ है। आज हमारे समक्ष यही सबसे बड़ी समस्या है, जिससे हम दोचार हैं।

क्या न्याय पाने के लिए जिसकी लाठी उसकी भैंस के सिद्धांत को अपनाया जाए? क्या सैन्य-औद्योगिक गठबंधन अपने उद्देश्य छोड़ इस निर्णय का औचित्य सिद्ध करने के लिए कुछ युद्धों में लिप्त हो जाएगा? क्या दुनिया के स्रोतों को बांट लेने को न्यायसंगत माना जाए? बिल्कुल नहीं, क्योंकि इससे नई विश्व व्यवस्था के कर्णधारों की बदनामी होगी, जब तक कि कुछ परिवर्तन नहीं आते और परिवर्तन सदैव आमजन की ओर से आते हैं।

पारिस्थितिकी

विकासशील देशों के गरीबों पर प्राकृतिक स्रोतों के अंधाधुध दोहन का आरोप लगाया लगाया जाता है जबकि खुद के लिए भोजन की व्यवस्था करने, कर्ज चुकाने, फौज को शस्त्र प्रदान करने, उनके तानशाह हुक्मरानों की और सफेदपोशों की भूख मिटाने के लिए डॉलर्स की जरूरत होती है। हैसियतदार लोगों का एक ही उद्देश्य होता है कि मालदार और अधिक मालदार हो जाएं। उनके ऐशो आराम में इज़ाफ़ा हो और वह स्वयं की खुशी की महफिलें सजाते रहें। इसके लिए तैयार किए गए कारखानों की दुनिया पारिस्थितिकी को मिटा रही है, वातावरण में जहर घोल रही है और उसूलों को तोड़ रही है। यह ऐसे शांत वातावरण में हो रहा है जब विज्ञान और तकनीक भरपूर तरीके से इस माहौल को परिवर्तित कर सकते हैं। जबकि आधुनिक युद्ध के समय तो पारिस्थितिकि को अपूरणीय क्षति पहुंचती है। हम भविष्य से अपव्यय की हद तक कर्ज ले रहे हैं, ऐसा कर्ज जो हमारी आने वाली पीढ़ियां चुका नहीं सकेंगी। इससे निजात पाने के सुझाव आ चुके हैं लेकिन ताकतवर लोग ही उनका क्रियान्वयन नहीं होने देते हैं। इन लोगों के बे-लगाम, लालची, स्वार्थपरक व मृत्युदायक व अल्पबुद्धियुक्त पूंजीवाद के बारे में कुरआन ने फरमाया है:

लोगों में कोई तो ऐसा है कि इस सांसारिक जीवन के विषय में उसकी बात तुम्हें बहुत भाती है, उस (खोट) के बावजूद जो उसके दिल में होती है, वह अल्लाह को गवाह ठहराता है और झगड़े में वह बड़ा हठी है। और जब लौटता है, तो धरती में इसलिए दौड़-धूप करता है कि इसमें बिगाड़ पैदा करे और खेती और नस्ल को तबाह करे, जबकि अल्लाह बिगाड़ को पसंद नहीं करता।

कुरआन २, २०४-२०५

कड़े विरोध के बावजूद पारिस्थितिकी संबंधी सुधार के प्रयत्न गति पकड़ रहे हैं। 1990 में पृथ्वी दिवस पर 140 देशों के एक अरब लोगों ने धरती से जुड़े मुद्दों पर जबर्दस्त प्रदर्शन किया, जिसे राजनेता अनदेखा नहीं कर सकते कि यह उनके वोट की राजनीति का सवाल था। यह समय है जब अंतर्राष्ट्रीय पारिस्थितिकी की ऐसी एजेंसी कायम की जाए, जिसमें सभी देश शामिल हों और न्याय को सामने रखें।

आबादी के मुद्दे

दुनिया की आबादी बहुत तेजी से बढ़ रही है जो मौजूदा स्रोतों से बहुत ज्यादा है। यह सभी के लिए चिंता का विषय है। चूंकि तीसरी दुनिया में आबादी की बढ़ोतरी ज्यादा है, इसलिए पश्चिमी देश उन पर तानाकशी करते और इसे गैर जिम्मेदाराना कार्य बताते हैं। जो देश गरीब मुल्कों को आनुदानिक सहायता प्रदान करते हैं, वे इस पर अनुशासनात्मक कार्रवाई करने की तरफदारी कर रहे हैं। यहां तक कि यूएसए का इरादा यह है कि सहायता को जन्म-संबंधी कानून बनाकर उससे जोड़ दिया जाए। डॉक्टर जीन मार्टिन ने एक लेख लिखा है कि 'क्या मेकियावेली डॉक्टर्स के लिए पाखंडियों से बेहतर मार्गदर्शक होंगे?'[१५] इसमें कहा गया कि तीसरी दुनिया में बहुत अधिक बच्चे पैदा करते हुए स्रोतों का अत्यधिक उपभोग किया जा रहा है, इससे अकाल जैसे हालात बनते हैं। शिशु मृत्यु दर में कमी से भी जनसंख्या में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। इसके बाद शिशु मृत्यु दर कम करने के उपायों पर विमर्श किया जा रहा है, क्योंकि इससे बच्चों की तादाद बढ़ रही है। ऐसे में अकाल जैसी स्थिति पैदा होने पर मृत्यु दर बढ़ जाती है। लिहाजा इस लेख में मेक्यावेली का नाम जोड़ा गया है।

इस मसले से इंकार नहीं किया जा सकता और जो परिवार स्वेच्छा

से परिवार् नियोजन व्यवस्थाओं को अपनाते हैं, तो इससे इस्लाम को भी कोई आपत्ति नहीं है। हमारा कहना यह है कि आबादी बढ़ाने का इल्जाम केवल तीसरी दुनिया पर मढ़ना तर्कसंगत नहीं है क्योंकि यह मसला बहुआयामी है। जैसा कि स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के जैव विज्ञानिकी विभाग से संबद्ध पॉल और एन एलरिच ने नेशनल जियोग्राफिक मैगजीन में लिखा है कि अमेरिका में पैदा हुआ एक बच्चा, बंगलादेश जैसे गरीब मुल्कों के सौ बच्चों से अधिक वैश्विक स्रोतों का दोहन करता है। उन्होंने लिखा कि लगातार बढ़ती आबादी गरीब देशों को आगे नहीं बढ़ने देती तो अमीर देशों में जनसंख्या समस्या धरती पर मौजूद सभ्यताओं की सहायता करने की क्षमता को क्षति पहुंचा रही है। गरीब मुल्कों में जन्म दर की वृद्धि उन्हें गरीब ही रहने देती है और मालदार राष्ट्रों के बच्चे दुनिया की संस्कृति को प्रोत्साहन देने के काबिल नहीं रहने देते हैं।[१६]

बुखारेस्ट में सन् 1974 में, दुनिया की बढ़ती आबादी पर हुई कॉन्फ्रेंस के दौरान तीसरी दुनिया की जनसंख्या वृद्धि दर कम करने पर भी विचार किया गया। इतिहास पर दृष्टि डालते हुए यह देखा गया कि यूरोप में जन्म दर घटने के क्या कारण थे। आम समझ यही थी कि प्रगति की भूख ने प्रजनन क्षमता को प्रभावितकिया, न कि जनसंख्या वृद्धि दर घटने से प्रगति हुई। कह सकते हैं कि विकास ही उत्तम गर्भ निरोधक है। फिर भी पूंजीवादी देश प्रजनन व्यवस्था पर रोक लगाने के पक्ष में आश्चर्यजनक रूप से अधिक उत्साहित हैं, जो उचित एवं सत्य के अनुकूल नहीं है।

"फॉरेन अफेयर्स" नामक पत्रिका में प्रकाशित लेख (1991) का सारांश यह है कि जहां तीन पीढ़ियों के बाद पश्चिम में दादा व दादी आठ पोते-पोतियों की देखरेख करेंगे, वहीं अफ्रीका और मध्य पूर्व के देशों में यह संख्या तीन सौ से भी अधिक होगी और यही संख्या पश्चिमी देशों को छोटा कर देगी।

नेशनल सिक्योरिटी स्टडी मेमोरेन्डम 200 का अध्ययन 'इंप्लीकेशंस ऑफ वर्ल्डवाइल्ड पॉपुलेशन ग्रोथ फॉर यूएस सिक्यूरिटी एंड ओवरसीज इंट्रेस्ट्स' बहुत जानकारीपरक व महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यह उस दुनिया की राजनीतिक, आर्थिक और सैन्य क्षेत्रों की उलझी गुत्थियां और उनसे जुड़ी ठोस वास्तविकताएं प्रस्तुत करता है। विदेशी आर्थिक हितों को सीमित करने में जनसंख्या का घटक

क्रांतिकारी भूमिका निभा सकता है। बढ़ती आबादी वाले देशों के नवयुवक उन्नति की चाहत करेंगे और विदेशी विनिवेश की शर्तों के पुनर्निर्धारण के साथ लगातार बढ़ते सैन्य खर्च को घटाने पर भी विमर्श किया जाएगा। इस लेख में यह भी विचार किया गया है कि क्या उन्नत राष्ट्र कम उन्नत राष्ट्रों के विरुद्ध एक पूर्व प्रस्तावित युद्ध छेड़ने में रुचि ले रहे हैं।

यह भी विचार किया जाना चाहिए कि अधिक समृद्ध राष्ट्रों को अपने ऐशो आराम की आदतें त्याग कर गरीब मुल्कों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए सहायता देना आवश्यक है। क्योंकि दुनिया सिकुड़ती जा रही है और इस कारण समृद्ध व निर्धन के मध्य पनपती दूरी को कम करना आवश्यक है। आंतरिक खुशी के लिए इससे अच्छा और क्या हो सकता है? अल्लाह ही समानता लाने वाला है।

जिहाद

पश्चिमी देशों के प्रेस ने शब्द जिहाद उस समय गढ़ा था जब क्रूसेड या धर्मयुद्ध के दौरान मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध किया जा रहा था। उस समय जिहाद का अर्थ ‹होली वॉर› (पवित्र युद्ध) प्रचारित किया गया, हालांकि इस्लामिक शब्दावली के अनुरूप यह शब्द ‹जिहाद› का सही अर्थ नहीं है।

जिहाद का अर्थ एक संघर्ष है, जो अपने-आप के दुर्गुणों, गलत आदतों के सुधार के लिए होता है। एक मुस्लिम खुद के व्यक्तिगत सुधार के लिए ही इसे नहीं अपनाता, अपितु वह पूरे समाज बल्कि व्यापक स्तर पर तो संपूर्ण विश्व के बारे में सोचता है कि उसकी बुराइयां कैसे दूर की जा सकती हैं। कुरआन में इसे इस्लामिक राष्ट्रों का कर्तव्य बताया गया है- जो नेकी की ओर बुलाए और भलाई का आदेश दे और बुराई से रोके... (कुरआन ३, १०४) यह काम अकेले मुसलमानों का नहीं है बल्कि पूरी मानव जाति का है, जो कुरआन के अनुसार इस धरती पर अल्लाह का प्रतिनिधि है। दूसरे समुदाय यह पवित्र काम करें तब भी मुसलमान इस फर्ज से अपना दामन नहीं बचा सकते हैं। आधुनिक विश्व के तमाम वैधानिक, कूटनीतिक, आर्थिक व राजनीतिक स्रोतों का भलाई के इस काम में उपयोग किया जा सकता है।

जरूरत पड़ने पर बुराई को रोकने के लिए ताकत का इस्तेमाल

भी किए जाने का निषेध नहीं है। आक्रमणकारियों को रोकने और शांति बरकरार रखने के लिए कुरआन शरीफ में व्यवस्था दी गई है- यदि मोमिनों में से दो गिरोह आपस में लड़ पड़े तो उनके बीच सुलह करा दो। यदि फिर उनमें से एक गिरोह दूसरे पर ज्यादती करे, तो जो गिरोह ज्यादती कर रहा है, उससे लड़ो यहां तक कि वह अल्लाह के आदेश की ओर पलट आए। (कुरआन ४९, ०९) इस वजह से फौज का इस्तेमाल एक छोटे समूह के लिए है, न कि आमजन के लिए। यही कारण है कि हजरत मुहम्मद (सल्ल.) जब एक फौजी झड़प से लौटे, तब उन्होंने साथियों को हिदायत दी और फरमाया कि अब हम एक छोटे जिहाद से लौटकर बड़े जिहाद (स्वयं के सुधार) की ओर आ गए हैं।

जिहाद, यहूदियों और ईसाइयों के खिलाफ संघर्ष का ऐलान नहीं है, जैसा कि मीडिया और कुछ राजनीतिक समूहों द्वारा इसके बारे में धारणा बना दी गई है। इस्लाम दूसरे धर्मावलबियों से जंग नहीं करना चाहता। और यहूदी तथा ईसाई तो इब्राहीमी सिलसिले के धर्म का पालन करते हुए इस विरासत को मुसलमानों के साथ साझा करने वाले हैं। ये तीनों ही समुदाय एक खुदा को मानते हैं।

एक न्याययुक्त संघर्ष (युद्ध) को इस्लाम के उसूलों के अनुसार किया जाना चाहिए लेकिन वर्तमान दौर के युद्धों में इन पर अमल नहीं किया जाता और यही कारण है कि जंग के स्थान पर दूसरे उपायों का प्रस्ताव रखा जाना आवश्यक हो गया है। दुनिया की सभी कौमें एक सार्वजनिक विचार पर एकत्र हो जाएं, और अपने दिल को बदल लें, साथ ही त्याग करने के लिए तैयार हो जाएं, तभी इंसाफ करना और आपसी संबंधों को सुधार पाना संभव है। ताकत का इस्तेमाल अंतिम हथियार नहीं हो सकता।

हमें यह मानना चाहिए कि दुनिया की तमाम कौमें, चाहे वह मुसलमान हों, ईसाई या यहूदी या अन्य कोई हो, सभी ने अपने धार्मिक आदर्शों का अनुपालन नहीं किया है। हमने गलतियां की हैं और कर रहे हैं। यहां तक कि ताकतवरों ने असहायों का शोषण किया है, जिसका कोई संबंध धर्म से नहीं होता। इसीलिए मानवीय गरिमा व स्वतंत्रता के अनुरूप अच्छी शिक्षा की आवश्यकता महसूस होती है, जो न्याय संगत हो। इसके माध्यम से राजनीतिक और आर्थिक लालसा को भी दबाया जा सकता है।

परिवार और यौन क्रांति

पैगम्बर मुहम्मद साहब ने फरमाया है- ..मर्द का आधा हिस्सा औरत है। अकेला मर्द और अकेली औरत एक इकाई है। दोनों विवाह बंधन में बंधें, तभी परिवार बनता है। जैसे पानी की एक बूंद में हाइड्रोजन और ऑक्सीजन दोनों साथ होते हैं। यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों की यही मान्यता है कि पुरुष व स्त्री के जोड़ को ही परिवार माना जाता है, जो विवाह के पाक बंधन में बंध जाते हैं, जिसे कुरआन के अनुसार एक विधिवत बंधन माना गया और यह दस्तावेज द्वारा जायज करार दिया जाता है। इसे ही शादी या विवाह कहा जाता है।

शादी का रिश्ता दोनों को एक-दूसरे के प्रति वफादारी और स्वयं के अधिकारों के साथ बच्चों के जन्म को कानूनी वैधता प्रदान कर देता है। परिवार नामक संस्था में बच्चों के लालन-पालन तथा शारीरिक व आत्मिक उत्थान के लिए जो कर्म आवश्यक हैं, उनकी शिक्षा दी जाती है जिससे वे जीवन संघर्ष को स्वीकार कर परिपक्वता के साथ जिम्मेदारी स्वीकारें और राष्ट्र के उत्थान में सहयोगी नागरिक बन सकें।

जैसे ही माता-पिता बुढापे की ओर पहुंचते हैं, वैसे ही बच्चों की जिम्मेदारी धार्मिक रूप से उन्हें संभालने की हो जाती है। उनके आराम का ध्यान रखने और उनसे सद्व्यवहार करने और अपनी जिम्मेदारी को निभाने की उनसे अपेक्षा की जाती है। यह एक प्रकार का हक है क्योंकि बच्चों को भी एक दिन बूढा होना है। उस समय उनके बच्चों की ओर से उन्हें सार-संभाल, देखभाल की आवश्यकता होगी।

इस्लाम में परिवार की मजबूती और ताकत को काफी महत्व दिया गया है। कुरआन यह कहता है कि मां के पेट का रिश्ता महत्वपूर्ण है। यह हर एक का कर्तव्य है कि धार्मिक रीति से अभिभावकों की हरसंभव सहायता करे तथा आवश्यकता पड़ने पर आर्थिक सहायता भी प्रदान की जानी चाहिए। माता-पिता की मृत्यु के बाद उनके दोस्तों से अच्छा बर्ताव करें और जरूरत होने पर उन्हें भी हरसंभव सहायता प्रदान करें।

इस्लाम ने शादी को एक द्वि-आयामी रिश्ता बताया है। पहला यह कि दो व्यक्तियों का एकीकरण होता है जो शारीरिक और

आत्मीय संबंध है, जैसा कि कुरआन कहता है: और यह भी उसकी निशानियों में से है कि उसने तुम्हारी ही सहजाति से तुम्हारे लिए जोड़े पैदा किए, ताकि तुम उनके पास शांति प्राप्त करो। और उसने तुम्हारे बीच प्रेम और दयालुता पैदा की। (कुरआन ३०, २१) तथा इस पवित्र रिश्ते का दूसरा उद्देश्य औलाद पैदा करना और संतति कायम करना है। कुरआन के मुताबिक: और अल्लाह ही ने तुम्हारे लिए तुम्हारी सहजाति पत्नियां बनाईं और तुम्हारी पत्नियों से तुम्हारे लिए पुत्र और पौत्र पैदा किए और तुम्हें अच्छी पाक चीजों से रोजी प्रदान की, तो क्या वे मिथ्या को मानते हैं और अल्लाह के अनुग्रह ही का उन्हें इंकार है? (कुरआन १६, ७२)

शादी ही कानूनी रिश्ता है जो औलाद को वैधता प्रदान करता है। शादी के अलावा बाहरी रिश्ते (अवैध शारीरिक संबंध) कायम करना सख्त गुनाह है। यदि इस प्रकार से कोई हरकत देखी जाए और चार व्यक्ति (बदचलनी का) प्रमाण दें, तब बहुत सख्त सजा का प्रावधान है। इस कारण संभावित बदचलनी पर रोक लगाई जा सकती है।

इसलिए शादी से पहले पवित्रता कायम हो और बाद में वफादारी कायम रहे। पहले यूरोप और अमेरिका में भी अवैध संबंधों पर पाबंदी थी लेकिन नास्तिकता के परवान चढ़ने और आस्तिकता सीमित आयाम में हो जाने से माहौल बदल गया है। हम अल्लाह को मानते हैं लेकिन हमारी शर्तों पर। हम हर हफ्ते इबादतगाह (चर्च) में जाते तो हैं लेकिन खुदा के लिए हमारी यह मान्यता है कि हमारी पारिवारिक जिन्दगी बाबत वह कुछ न कहे और न ही सार्वजनिक जीवन के बारे में। आस्था के इस तरह डिग जाने से यौन क्रांति ने जन्म लिया और धार्मिक उसूलों की महत्ता कम हो गई।

यह मान्यता गलत है कि इसकी शुरुआत 1960 में हुई। यह तो बहुत पुराना नियोजित प्रयत्न है जो समाज में बदलाव लाना चाहता था और यह शास्त्र से जुड़ाव और तकनीकी सक्षमता से उत्पन्न हुआ। धीरे-धीरे चर्च को बाहर का रास्ता दिखा कर मजहब को तख्त से उतार दिया गया तथा पुरानी मान्यताओं और सिद्धांतों को महत्वहीन कर दिया गया। इस नई जल्दबाजी में यह भूल गए कि मानव मानसिकता अधूरी है, यदि यह नहीं मानते तो क्यों इतना अनुसंधान करते और क्यों जांच पड़ताल की जाती। कुरआन ने

कहा है- कह दोः 'रूह का संबंध तो मेरे रब के आदेश से है, किंतु ज्ञान तुम्हें मिला थोड़ा ही है। (कुरआन १७, ८५)

द्वितीय विश्व युद्ध के समय 'मोरैलिटी विदाउट रिलीजन' जैसे आंदोलनों के चलते यह मान्यता पनपी कि मजहब इंसानों को बांटता है। इस विचार के लोगों की स्वतंत्र मान्यता यह थी कि हम किसी नैतिकता से बंधे हुए नहीं हैं क्योंकि बाइबल और विज्ञान में बहुत अंतर है। जैसे ही खुदा का दर्जा कम हुआ, वैसे ही इंसान यह मानने लगे कि प्राचीन सिद्धांत व मान्यताएं अब पुरानी हो गई हैं और कोई कुदरती ताकत है ही नहीं। भौतिकवाद के पनपने से इंसानों की सनक महत्वपूर्ण होने लगी और आजादी हद से आगे निकल गई।

धर्म की इस तरह अनदेखी का प्रभाव यह हुआ कि नैतिकता को भी दरकिनार कर दिया गया। पादरी लोग भी इसका शिकार हो गए और उन्होंने भी कौमार्यवृत्त का यह अर्थ निकाला कि आदमी शादी नहीं करे लेकिन वह कामक्रिया कर सकता है। नतीजा यह हुआ कि समाज में अवैध शारीरिक संबंध फलने-फूलने लगे और पूर्व में पवित्रता की जो मान्यता थी, वह इजाजती कामक्रिया में बदल गई। इससे अवैध संतानों की तादाद बढ़ गई और नई बीमारियां फैल गईं जो इस तरह के नाजायज संबंधों का ही नतीजा थीं।[१९]

मुसलमानों में क्या जायज है और क्या नाजायज, इस बाबत किसी प्रकार की गलतफहमी के लिए स्थान नहीं है। कुरआन अपने मूल रूप में अक्षुण्ण है। जैसा वह अवतरित हुआ है, वैसा का वैसा ही अक्षरशः मौजूद है। उसमें नैतिक व अनैतिक की जो व्याख्या की गई है, वह सदैव मौजूद रहेंगी। उन्हें परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। कोई भी धर्माचार्य या विद्वान यह दावा नहीं कर सकता कि उसे कुरआन का अर्थ अपने अनुसार निकालने का अधिकार दे दिया गया है। इससे यह नहीं है कि मुसलमान गुनाह (पाप) नहीं करते, लेकिन वे जानते हैं कि यह पाप है और तब तक बाकी रहेगा, जब तक वे इसके लिए अल्लाह से क्षमा याचना नहीं करेंगे।

जो मुसलमान ऐसे राष्ट्रों में रहते हैं जहां मुस्लिम हुकूमत नहीं है, वहां उनके बच्चों में इस्लामिक नैतिक संस्कार देने में समस्या आती है, क्योंकि उनके नैतिक मूल्यों की तुलना दूसरे समुदायों के नैतिक मूल्यों से की जाती है। मुसलमान अकेले नहीं, यहूदी भी

इस तरह की मुश्किल से गुजर रहे हैं। ईसाई भी इसी परेशानी में हैं और अब सैद्धांतिक सहकारिता की कोशिश हो रही है। मुसलमान यही मानते हैं कि खुदा के आदेशों का पालन होता रहे तो सब कुछ ठीकठाक रहेगा क्योंकि हुकूमत तो अल्लाह की ही है।

हमारे साथ ही बच्चों में अल्लाह के प्रति आस्था उन्हें सिखा देती है कि हम अल्लाह को मानते हैं तो उसके आदेशों को भी मानना जरूरी है। हम उसे मानते हैं तो इसकी चिंता नहीं करनी चाहिए कि दूसरे उसे मानते हैं या नहीं। ईमान के साथ दिए जा रहे संस्कार बच्चे में हौसला पैदा करते हैं। वह भविष्य में धूम्रपान, शराब और नशीली दवाओं से बच जाता है क्योंकि संस्कारों की शिक्षा देते समय ही उसे यह समझा दिया जाता है कि ये वस्तुएं हानिकारक हैं।

कुआंरेपन में पवित्रता की शिक्षा बच्चों में अल्लाह के आदेश का पालन करने का जज्बा पैदा करती है। जब मुस्लिम और गैर मुस्लिम वार्तालाप होता है, तब दोनों ही लिंगों को बराबर माना जाता है। तब यह बात पैदा हो जाती है कि इंसाफ को मान्यता दी जाए। जब मर्द और औरत के संबंधों की बात सामने आती है, तब स्वतंत्र यौन संबंध के परिणाम सामने आते हैं, तब यही होता है कि औरत की ही मुसीबत अधिक होती है। जब वह इस प्रकार के संबंधों से गर्भधारण कर ले, अधूरा बच्चा हो जाए या फिर अवैध बच्चा अपनी उम्र तक पितृहीन रहे। इसे तो इंसाफ नहीं कहा जा सकता।

लैंगिक क्रांति के बहुत बाद समलैंगिकता उत्पन्न हुई। हालांकि यह कोई नई उत्पत्ति नहीं है। यह तो हमेशा से मौजूद रही है लेकिन पहले नगण्य रूप में थी। बीते दो दशकों में इसका खासा प्रचार-प्रसार किया गया। बाद में जब-जब इस प्रकार के सम्मेलनों में भाग लिया, वहां यह दर्शाया जाता है कि गुदा मैथुन अधिक सुरक्षित होता है, तब मुझे ऐसी व्याख्या पर शक हुआ और वे लोग ईमानदार नहीं मालूम हुए। लेकिन बाद में अमेरिकन मनोवैज्ञानिक सभा ने समलैंगिकता को अन्य स्वरूप बताया और बाद में जो कुछ हुआ, वह सब जानते हैं।

बाद में गे बॉवेल सिंड्रोम की बाबत चिकित्सकीय पत्रिका में छापा गया और एड्स नामक बीमारी को समलैंगिकता का नतीजा बताया

गया। बीमारी बढ़ने पर यह एक राजनीतिक समस्या बन गई और बहुत भयानक स्थिति आ गई। यहां तक कि खून चढ़ाने में, ड्रग्स के आदी व्यक्तियों में, भ्रूण में, अनेक लोगों से शारीरिक संबंध रखने वालों में तथा दूसरे तरीकों से भी इस बीमारी का खतरा पैदा हुआ। इसके कारण समलैंगिकता समर्थक वर्ग ताकतवर बन गया, जिस पर काबू पाना मुश्किल था। इन्हें मीडिया, कलाकारों व राजनीतिज्ञों के एक वर्ग का समर्थन मिलना लगा तथा यह पूरे संसार की समस्या बन गई। मुस्लिम वर्ग को भी इसके पीड़ितों से हमदर्दी और बीमारों को अच्छा इलाज मिले, यह ख्वाहिश थी। जिन्हें यह बीमारी लगी थी, उन्हें सुरक्षात्मक उपाय करना चाहिए। यह किसी कंडोम से हासिल नहीं हो सकता। इसके लिए तो परहेजगारी व पवित्रता जरूरी है। शादी के पहले भी और बाद में भी वफादारी रखना आवश्यक है।

समलैंगिकता की बहस बढ़ रही है। 'जैसे हो, वैसे ही रहो' और 'इस पर शर्माओ मत' जैसी बातें कही जाती हैं। बहुत से ऐसे युवा जिनके बारे में आप सोच भी नहीं सकते, वे प्रयोगों या स्वयं की खोज की धुन में इस ओर आ गए। यहां तक कि समलैंगिक दिवस, समलैंगिक गौरव, मास तक मनाया जाने लगा व स्केन्डेनेविया में स्वीकृति की उम्र चार वर्ष तक घटाने की मुहिम शुरू हो गई। दो पुरुष या दो महिलाओं के जोड़े द्वारा एक परिवार की वैकल्पिक व्यवस्था बनाई जाने लगी।

अभी-अभी विज्ञान में शारीरिक बनावट और वंशानुगत बुनियादों को समलैंगिकता का उत्प्रेरक बताया गया। मुस्लिम समाज पर इन सब सक्रियताओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि उनका मामला बहुत स्पष्ट हैः हम अपने धर्म खुद नहीं बनाते हैं। वह तो हमें जैसा मिला है, वैसा ही रहेगा। हमें इसका पालन करना है। हम अपनी आस्था किसी और पर थोप नहीं सकते, लेकिन हम कुरआन और पैगम्बर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) की शिक्षाओं पर पूर्ण आस्था रखते हैं, जिन्होंने समलैंगिकता को धिक्कार दिया है। कोई आदमी कितना भी सोचे कि उसमें समलैंगिकता के गुण हैं, तब भी उसे बर्ताव में, व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। चाहे कितना भी जज्बा हो कि वह समलैंगिक संबंध बनाए और किसी भी साथी के साथ जो कि उसकी प्राकृतिक जोड़ी (पति-पत्नी) नहीं हो, तो उस के साथ सहवास करना, नशा करना या कोई अपराध करना गलत है। व्यक्ति जो भी मन में आए वह नहीं कर सकता,

उसे खुद पर नियंत्रण रखना है। कुरआन ने फरमाया है- न किसी ईमान वाले, न किसी ईमान वाली स्त्री को यह अधिकार है कि जब अल्लाह और उसका रसूल किसी मामले का फैसला कर दे, तो फिर उन्हें अपने मामले में कोई अधिकार शेष रहे। जो कोई अल्लाह और उसके रसूल की अवज्ञा करे तो वह खुली गुमराही में पड़ गया। (कुरआन ३३, ३६)

हर व्यक्ति में एक वंश (जीन) होता है जो खुद पर काबू रखने का होता है। वही काम आता है। उसे कहा जाता हैः 'स्व-नियंत्रण का जीन।'

बायोमेडिकल नैतिकता

प्रजननीय मुद्दे

प्रजनन नियम- गर्भनिरोध, स्तनपान, अंतगर्भाशयी विधि (लूप), गर्भपात, बंध्याकरण

बांझपन का इलाज- कृत्रिम बीजारोपण, इनविट्रो फर्टिलायजेशन, सरोगेट मातृत्व

अंगदान और प्रत्यारोपण- मांसपेशीय ऊतकों का प्रत्यारोपण, मस्तिष्कविहीन भ्रूण, यौन ग्रंथियों का प्रत्यारोपण

मृत्यु की परिभाषा

इच्छा मृत्यु

जीन इंजीनियरिंग

बायो एथिक्स इस समय का गंभीर विषय है। इस भाग में हम उसी से जुड़े विभिन्न मुद्दों की चर्चा करेंगे, जिनके बाबत इस्लामी नजरिया एकदम स्पष्ट है।

प्रजननीय मुद्दे

गर्भ निरोध- इस्लाम गर्भ निरोध की इस हद तक इजाजत देता है कि विवाह के महत्वपूर्ण उद्देश्य संतानोत्पत्ति पर इसका कोई प्रभाव न पड़े। हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के समय से ही गर्भ निरोध पर

अमल होता रहा है। लेकिन यह कार्य पति व पत्नी दोनों की ही रजामंदी से हो सकेगा। आम बात यह कि इस्लामी वंश को बढ़ाया जाए लेकिन यह स्तरीय हो, न कि आबादी बढ़ाना ही उद्देश्य हो। पैगंबर साहब (सल्ल.) की स्पष्ट हिदायत व भविष्यवाणी है कि एक दिन वह आएगा कि अन्य देश तुम पर ऐसे टूट पड़ेंगे जैसे भूखे व्यक्ति खाने पर टूट पड़ते हैं। जब पूछा गया यह तादाद की कमी के कारण होगा। फरमाया- नहीं, उस समय संख्या तो बहुत ज्यादा होगी लेकिन तुम्हारी धाक नहीं होगी और पानी पर झाग की तरह रहोगे।

इस्लामी इतिहास में विद्वानों ने प्रारंभ से ही यह व्यवस्था दे रखी है कि स्वास्थ्य की खातिर, सामाजिक, आर्थिक स्थिति या महिलाओं की सुंदरता बरकरार रखने के लिए परिवार नियोजन किया जा सकता है। प्राकृतिक और कृत्रिम, दोनों तरीके अपनाए जा सकेंगे लेकिन वह गर्भपातिक नहीं हो। प्रत्येक परिवार का स्वेच्छा से बिना दबाव के बंध्याकरणकिया जा सकेगा। जहां भी परिवार नियोजन को बढ़ावा दिया जाता हो, ऐसे देशों में प्रचार किया जाए। कंडोम उपलब्ध कराए जाएं और यह निर्णय परिवार का स्वैच्छिक हो।

पश्चिमी देशों ने तीसरी दुनिया के लिए योजनाएं दी हैं, वह वास्तव में केवल उनके लोगों की तादाद को कम करने या बहुजन को अल्पसंख्यक बनाने के लिए है। इस तरह एक डेमोग्राफिक वारफेयर चलाया जा रहा है। यह भी सत्य है कि परिवार नियोजन के जिनसाधनोंपर पश्चिमी देशों ने पाबंदी लगी दी है, उन्हें तीसरी दुनिया के देशोंव इस्लामिक राष्ट्रों में धड़ल्ले से निर्यात किया जा रहा है। इस काम में सुरक्षा मानकों की भी अनदेखी की जा रही है। इस संबंध में पश्चिमी देशों का पूंजीनिवेश इसलिए भी होता है कि तीसरी दुनिया के लोग उनका घरेलू उत्पाद हो जाएं और आवश्यक तकनीक भी बता दी जाए।

स्तनपान- इस्लामी शिक्षा में स्तनपान को प्रोत्साहित किया गया है। लेकिन परिवार नियोजन के उद्देश्य से स्तनपान को नापसंद किया गया है। यह अनुमान है कि सामूहिक रूप से जहां स्तनपान का रिवाज है, वहां जन्म दर घटी है। कुरआन शरीफ स्तनपान की हिदायत देता है जो दो वर्षों तक जारी रखी जाए।

इस्लाम में स्तनपान को परिवार नियोजन के अलावा शिशुओं के लिए पौष्टिक तरीका भी माना गया है। इसे एक महत्वपूर्ण मूल्य मानते हुए धाय को भी सम्मान दिया गया है। असल मां के अलावा दीगर स्त्री किसी बच्चे को स्तनपान कराती है तो उसको भी दूध पिलाने वाली माता का दर्जा दिया जाता है। इस बाबत कई न्यायोद्धरणों में दूध पिलाने वाली महिला को नैसर्गिक महिला दर्जे किया गया है। ऐसे बच्चों को दूध शरीक भाई-बहन माना जाता है, जो एक-दूसरे से विवाह नहीं कर सकते।

अंत:गर्भाशयी विधि (लूप, आईयूडी)

अंत:गर्भाशयी उपकरण, जो गर्भ निरोधक का कार्य करे लेकिन उसके कारण गर्भपात हो तो उसे मान्यता नहीं दी जाएगी। फिलहाल आईयूडी को विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने गर्भ निरोधक होने की मान्यता दी है, न कि गर्भपातिक उपकरण की। मौजूद उपकरण में तांबे का एक तार होता है, जो सुपरमाइसिडल ऑयन लहर होती है, यह गर्भाशय की झिल्ली को गाढ़ा कर देती हैजिससे शुक्राणु अंदर नहीं जा पाता है। इसलिए आईयूडी को गर्भ निरोधक की मान्यता प्रदान की गई है।

गर्भपात- इस्लाम में प्रो-लाइफ या प्रो-चॉइस (जीवन रक्षक या स्व-चयनित) धारणाएं नहीं हैं। इस्लाम गर्भपात को गर्भ निरोध से एकदम अलग करके देखता है। इसे मानव जीवन की क्षति माना गया है। इस्लाम में गर्भाशय के अंदर भ्रूण के भी जीवन की मान्यता है, जो 'अपूर्ण धिम्मा' माना गया है। हालांकि धिम्मा एक कानूनी पहलू है, जो अधिकार एवं कर्तव्य स्पष्ट करता है, लेकिन भ्रूण के लिए कोई कर्तव्य नहीं, केवल अधिकार ही हैं, जो निम्नलिखित हैं-

१. गर्भवती महिला के पति का देहांत हो जाए तो पैदा होने वाले बच्चे का हिस्सा दूसरे उत्तराधिकारियों से आनुपातिक होता है, लेकिन गर्भ वाले बच्चे की पैदाइश तक उसका हिस्सा अलग रखकर अन्य उत्तराधिकारियों को आवंटित किया जा सकता है।

२. अगर गर्भपात हो जाए लेकिन भ्रूण को धड़कन, हलचल या खांसी जैसा कुछ होता है तो उसे भी उत्तराधिकार प्राप्त होता है, जैसा कि गर्भ की शुरुआत में होता है, जो उस मृत भ्रूण का हिस्सा दूसरे उत्तराधिकारियों में आनुपातिक रूप से आवंटित किया जाता

है।

३. अगर कोई महिला ऐसा अपराध करती है, जिसकी सजा मौत हो और वह उस समय गर्भवती हो तो मृत्यु दंड को उस समय तक निरुद्ध किया जाए, जब तक पैदाइश न हो जाए और उसका दूध छुड़ाया नहीं जाए। गर्भ की मुद्दत नियत नहीं है, क्योंकि गर्भ में बच्चे को जीवन की मान्यता है। यहां तक कि अगर गर्भ अवैध हो तब भी, वही मान्यता रहेगी। विवाहेतर संबंधों के कारण ठहरे गर्भ को भी जीवन के अधिकार हैं। सभी फिक्ह (धार्मिक कानूनी पंथ) इसे मान्यता देते हैं।

४. गर्भपात (अगर वह दुर्योग से हो, तो भी) को अर्थदंड दिया जाता है, जिसे घोरा कहा जाता है। अगर जान-बूझकर गर्भपात किया जाता है तो उसके लिए सजा दी जाती है। जिंदगी की शुरुआत पर इस्लामी विद्वानों में बहस होती रही है, क्योंकि गर्भ को जीवन की शुरुआत माना गया है। पुराने कानूनविदों में किसी ने चार माह से पहले या सात सप्ताह से पहले गर्भपात की अनुमति यह मानकर दी है कि भ्रूण में जीवन उत्पन्न नहीं होता है। दसवीं शताब्दी के विद्वान इमाम गजाली ने यह माना है कि गर्भ में कोई हलचल हो, तभी जीवन का आरंभ माना जाएगा। लेकिन सम्मेलनों में इस मुद्दे पर नवीन तकनीक के मद्देनजर पुनर्विचार किया गया है, जिसमें निम्नलिखित पहलू सामने आए- (१) यह एक शुद्ध और पूर्ण परिभाषित मामला हो। (२) जो जीवन की बढ़त का पहलू उजागर करता हो। (३) अगर भ्रूण की बढ़त को रोका नहीं जाए तो पूर्णता प्राप्त कर लेगा। (४) भ्रूण ऐसी जेनेटिक आकृति प्राप्त कर चुका हो, जो मानव के लिए आवश्यक हो, जो एक व्यक्तित्व लिए हो और (५) जिसमें पूर्व वर्णित पहलुओं का अभाव हो, यानी यह (फर्टीलाइजेशन) उर्वरण से संबंधित हो।

गर्भपात की अनुमति उस वक्त है जब उसके कारण मां के जीवन को खतरा पैदा हो जाए। शरीअत में मां को ही प्रधान और भ्रूण को माता के गर्भ की ही एक उत्पत्ति माना गया है। गर्भपात को चार माह से पूर्व अनुमति दिया जाना मानते हैं, जबकि संभव जीवन के आसार नहीं हों।

बंध्याकरण- जब तक किसी चिकित्सकीय राय के मुताबिक नहीं हो तो इसे अच्छा नहीं माना गया है। यह उसी वक्त स्वीकार्य

हो सकता है, जब किसी महिला के बच्चे अधिक हों और उसके प्रजनन काल की समाप्ति नजदीक हो। इसकी अनुमति पति व पत्नी दोनों ने सहमति से प्रदान की हो, जिसमें उलट-फेर नहीं हो जाने की कोई गारंटीदी गई हो। कोई भी सरकार बंध्याकरण के लिए किसी को बाध्य नहीं कर सकती। डॉक्टरों को भी यही हिदायत है कि गर्भपात की शल्यक्रिया तभी करें जब वह मरीज की बेहतरी के लिए हो।

बांझपन का इलाज

गर्भ प्राप्त करने का कानूनी अधिकार है, जिसके लिए व्यक्ति हरसंभव उपाय कर सकता है, जो शरीअत के खिलाफ न हों।

कृत्रिम बीजारोपण- इसकी इजाजत तभी दी जाती है, जब शुक्राणु वास्तविक पति (एटीएच) के ही हों। प्रदानकर्ता (एआईडी) के शुक्राणुओं काउपयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह वैवाहिक अनुबंध के अनुसार होना चाहिए।

इन विट्रो फर्टिलायजेशन- इस प्रक्रिया को आम तौर पर टेस्ट ट्यूब बेबी कहा जाता है। यह इस्लाम में तभी जायज है जब पति-पत्नी शामिल हों, यानी कि इसमें भी वैवाहिक अनुबंध का ही पहलू हो। विवाह का संबंध जीवन के साथ है, अगर किसी व्यक्ति का शुक्राणु संभालकर रखा गया हो और उसकी मृत्यु हो जाए तो विधवा को भी मृत पति के शुक्राणु से गर्भ प्रदान नहीं किया जा सकता है। किसी अन्य व्यक्ति के शुक्राणु का इस्तेमाल तो शादी के बंधन से बाहर का प्रकरण होने से इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है। बाहरी शुक्राणु व बाहरी अंडाणु अथवा बाहरी गर्भाशय भी इस्तेमाल नहीं किया जा सकेगा।

सरोगेट मातृत्व- किसी अन्य व्यक्ति का शुक्राणु अपने गर्भ में या कोख में रखने को इस्लाम में मान्यता प्राप्त नहीं है। यह विवाह के बाहर की चीज होने से जायज नहीं है। इस प्रकार सेरोगेसी बाबत अमेरिका में विचार-विमर्श हो चुके हैं, क्योंकि इस प्राकर प्राप्त बच्चे को कमोडिटी माना जाता है, जो मानवता के विरुद्ध है, क्योंकि गर्भ में पल रहे बच्चे को प्रारंभ से ही दूसरे को देना तय होता है, जिसका किराया या कीमत पूर्व निर्धारित होती है। इससे मातृत्व को एक मूल्य के अलावा परिसंपत्ति (एसेट) माना जा सकेगा। अगर इसे बढ़ावा दिया जाता है तो आगे चलकर खतरनाक नतीजे

बरामद होंगे।

अंगदान व प्रत्यारोपण

कुरआन में फरमाया गया है कि «...और जो कोई भी किसी का जीवन बचाता है, वह ऐसा ही है कि उसने पूरी मानवता की जान बचाई।» इससे ज्यादा अच्छी बात क्या हो सकती है कि निष्क्रिय शारीरिक अंगों के स्थान पर दानकृत अंग लगा दिए जाएं? कुरआन के बताए हुए नियमों पर गहन विचार कर यह प्रक्रिया शुरू हुई है।

बुनियादी तौर पर इंसानी जिस्म को भंग करना, चाहे व जीवित हो या मृत, इस्लाम के नियमों के खिलाफ है। किसी दानकर्ता के शरीर को चीरा-फाड़ा जाने या केडेवर को चीरकर अंग निकालने की इजाजत नहीं दी जा सकती। पर यह सब कुछ दो न्यायिक उसूलों को एकत्र करने पर प्राप्त हुआ है- «जरूरत निषेध को रद्द कर देती है» और «छोटी बुराई को अपनाया जा सकता है, अगर दोनों को रद्द नहीं किया जा सके।» चूंकि मानव जीवन को बचाना किसी मृतक के अंग को बचाए रखने से ज्यादा जरूरी होता है। किसी जीवित व्यक्ति की मौत हो जाए, इससे तो अच्छा है कि दानदाता के शरीर से कुछ ले लिया जाए, लेकिन इससे दानदाता को कोई खतरा नहीं होना चाहिए। इसमें किसी दबाव के बगैर स्वतंत्र स्वीकृति भी देखनी चाहिए। अगर किसी मृत व्यक्ति का कोई अंग लेना हो तो उसके वारिस की स्वीकृति जरूरी है। इन्हीं शर्तों पर इस्लाम में अंगदान या प्रत्यारोपण को स्वीकृति दी गई है।

मांसपेशीय ऊतकों का प्रत्यारोपण- आधुनिक शोध कार्यों से पता चला है कि इस किस्म के प्रत्यारोपण के जरिये कई बीमारियों का इलाज किया जा सकता है। यह वैधानिक होगा कि किसी पशु के भ्रूण को या एडरनल ग्लैंड मैडुला के मानवीय भ्रूण का इस्तेमाल तत्काल किया जा सके। किसी जीवित भ्रूण की आहुति दिया जाना अवैधानिक होगी। मां का जीवन बचाने के लिए भ्रूण के ऊतक का इस्तेमाल किया जाए। अधूरा गिराने के लिए दूसरा भ्रूण पैदा करना अवैधानिक है।

मस्तिष्कविहीन भ्रूण- जिस भ्रूण में ऐसी जन्मजात् असामान्यता नजर आए कि उसमें खोपड़ी व भेजे के हेमिस्फियर्स ही नहीं हों, जो पैदा हो भी जाए तो मर ही जाएगा, ऐसा भ्रूण भी जब तक जीवित हो, तब तक प्रत्यारोपण नहीं किया जाना चाहिए। कृत्रिम

मृत्यु नहीं दी जानी चाहिए। उन्हें उस वक्त जीवित रखा जाए, तब तक कि मस्तिष्क मृत प्राय नहीं हो जाता।

यौन ग्रंथियों का प्रत्यारोपणः अंड ग्रंथियों को उस समय तक किसी अन्य व्यक्ति को नहीं दिया जाना चाहिए जब तक उनमें शुक्राणु पैदा करने या निकालने की क्षमता मौजूद हो। अगर ऐसा किया जाए तो दानदाता की ही मिलकियत रहेगी, न कि प्राप्तकर्ता की। अगर इस तरह का प्रत्यारोपण हो तो वह अवैध होगा, क्योंकि वह वैवाहिक अनुबंध के तहत प्राप्त नहीं हुआ है। सुप्त यौन ग्रंथियां, जो कुछ उत्पन्न नहीं कर सकती हों, उनका उपयोग चिकित्सा प्रणाली में नहीं किया जा सकेगा।

मृत्यु की परिभाषा

चिकित्सकीय व्यवस्थाओं के लिए मौत या मौत के समय को परिभाषित करना जरूरी है। जैसा कि शरीर में जीवन का प्रमाण नहीं होने पर ही कृत्रिम अंग निकालकर प्रत्यारोपण की अनुमति दी जा सकेगी या एक महत्वपूर्ण अंग लिया जा सकेगा (जैसे कि ह्रदय)। इसका सीधा प्रभाव उस समय कठिन होगा जब दो व्यक्ति एकसाथ आगे-पीछे मर जाएं, तब कानूनन उनका उत्तराधिकारी तय करना मुश्किल हो जाएगा। किसी विधवा की उत्तराधिकारिता उस समय तक तय नहीं की जा सकती, जब तक कि गर्भावस्था समाप्त नहीं हो जाए। उसे ४ माह १० दिन तक पुनर्विवाह भी नहीं करना चाहिए।

वर्तमान विधिक सम्मेलनों में होने वाली परिचर्चाओं के अनुसार किसी व्यक्ति को मृत मान लेने के लिए इतना काफी है कि उसकी दिमागी मौत (ब्रेन डेड) हो जाए और कृत्रिम व्यवस्था के जरिये दूसरे अंग काम कर रहे हों। यह परिभाषा अनेक समानताओं के मद्देनजर एक प्राचीन विधिक नियम के तहत तय की जा रही है, जो घातक चोट के बारे में भी विवेचन करता है। जैसे किसी व्यक्ति को छुरा घोंप दिया जाए और उसकी आंतड़ियां बाहर निकल आएं, लेकिन वह तड़प रहा हो या उसके हाथ-पैर हिल रहे हों, तो भी उसे मृत माना जाएगा। बाद में कोई दूसरा हमलावर उसकी हलचल भी पूर्ण रूप से समाप्त कर दे, तो हत्या का आरोप प्रथम आक्रमणकारी पर ही लगेगा, दूसरे पर अन्य आरोप लगेंगे। किसी व्यक्ति की दिमागी मौत हो जाने पर जब उसके दूसरे अंगों को

कृत्रिम एनिमेशन द्वारा जीवित रखा गया हो तब एनिमेशन को स्विच ऑफ करना पाप नहीं है। या इसी समय दिमागी तौर पर मृत व्यक्ति का ह्रदय निकालकर दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रत्यारोपित कर दिया जाए तो भी पाप नहीं है।

इच्छामृत्यु

हॉलैंड में इसे कानूनी स्वरूप दिया जा चुका है। अमेरिका के दो राज्यों में इस बाबत रायशुमारी की जा चुकी है, जो असफल रही। फिर भी इच्छा मृत्यु की मांग जोर पकड़ रही है। इस बाबत इस्लाम के अपने पुख्ता विचार हैं।

मानव जीवन- पैगंबर हजरत मूसा (अ.), ईसा (अ.) और मुहम्मद (सल्ल.) से पहले ही इस्लाम में मानव जीवन की पवित्रता को मान्यता दी गई है। आदम के एक पुत्र हाबील ने काबील को मार डाला था। उसी पर टिप्पणी करते हुए कुरआन में कहा गया है- इसी कारण हमने इस्राईल की संतान के लिए लिख दिया था कि जिसने किसी व्यक्ति को किसी के खून का बदला लेने या धरती में फसाद फैलाने के अतिरिक्त किसी और कारण से मार डाला तो मानो उसने सारे ही इंसानों की हत्या कर डाली। और जिसने जीवन प्रदान किया, उसने मानो सारे इंसानों को जीवनदान किया...। कुरआन (०५, ३२) कुरआन में यह भी कहा गया है- "...और किसी जीव की जिसे अल्लाह ने आदरणीय ठहराया है, हत्या न करो, यह और बात है कि हक (न्याय) का तकाजा यही हो..." कुरआन (०६, १५१, १७-३३) शरीअत में इस प्रकार किसी दूसरे व्यक्ति की जान लेने की इजाजत नहीं है। चाहे युद्ध का समय हो या शांति, इसके लिए कड़े निर्देश दिए गए हैं, जिनका पालन किए बगैर किसी की जान नहीं ली जा सकती।

क्या आत्महत्या का अधिकार है?- इस्लाम इसे अधिकार नहीं मानता बल्कि इसे तो उल्लंघन मानता है। जब हमने अपने-आप को पैदा नहीं किया और हम अपने शरीर के स्वामी भी नहीं हैं, हमें तो यह शरीर संभालने व सही-सलामत रखने के लिए दिए गए हैं, मालिक तो अल्लाह है, जो जिंदगी देता और लेता है। इसका हम उल्लंघन नहीं कर सकते हैं। इसलिए आत्महत्या करना इस्लाम में गंभीर अपराध है। कुरआन में कहा गया है- और न खुद की हत्या करो। निस्संदेह अल्लाह तुम पर बहुत दयावान है। कुरआन

(०४, २९) हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने आत्महत्या के खिलाफ फरमाया- जो अपने-आप को किसी हथियार से मारता है तो उसे जहन्नुम (नर्क) में भी साथ ले जाएगा। जो जहर खाकर मरता है, वह दोजख में भी उसे खाता रहेगा। जो पहाड़ पर से कूदकर जान देगा तो वह दोजख की गहराइयों में गिरता रहेगा।

इच्छा मृत्यु- «दया मृत्यु?» शरीअत में जान लेने की हालत व शर्तें दर्ज की गई हैं, लेकिन आम नियमों के अपवादस्वरूप और जीवन की पवित्रता के मद्देनजर इच्छा मृत्यु की कोई गुंजाइश नहीं है। मानव जीवन बहुमूल्य है, जिसका आदर करना जरूरी है। इस्लाम में ऐसी कोई जिंदगी दर्ज नहीं है, जो जीने के काबिल नहीं हो।

दुख-तकलीफ से बचने के लिए या उसे रोकने के लिए खुद की जान ले लेना स्वीकार्य नहीं है। हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने बताया कि पुराने जमाने में एक व्यक्ति था, जिसकी तकलीफ बहुत परेशानी वाली थी, उसने चाकू लेकर खुद की कलाई की नस काट डाली और खून बहने से वह मर गया। जिस पर अल्लाह ने फरमाया «उस बंदे ने अपनी जान ले ली, मैं उसे जन्नत में जगह नहीं दूंगा। इसी तरह एक जंग में एक मुसलमान को मार डाला गया। सहाबा रदि. (हजरत मुहम्मद सल्ल. के साथी) उसकी प्रशंसा करते रहे कि वह बहुत बहादुर और ताकतवर था लेकिन उस वक्त आश्चर्यचकित हुए जब पैगंबर (सल्ल.) ने फरमाया कि उसकी जगह नर्क में है। इस बाबत खोज करने पर सहाबाओं को पता चला कि वह व्यक्ति बुरी तरह घायल हो गया था। इस पर उसने अपनी तलवार सीने में घोंपकर आत्महत्या कर ली।

द इस्लामिक कोड ऑफ मेडिकल एथिक्स[३०] ने इस्लामिक मेडिसिंस पर आयोजित प्रथम अंतरराष्ट्रीय कांफ्रेंस में कहा कि "दया मृत्यु आत्महत्या की तरह है। "किसी भी दर्द के लाइलाज होने पर इच्छा मृत्यु का तर्क भी खारिज कर दिया गया। कहा गया कि कोई दर्द ऐसा नहीं है, जिसका उपचार दवाओं या न्यूरो सर्जरी के द्वारा न हो सके। इस कॉन्फ्रेंस में दया मृत्यु का समर्थन सिर्फ नास्तिक विचारधारा वालों ने यह कहकर किया कि "इस धरती पर मानव की उत्पत्ति शून्य में हुई है।"

इसमें आगे यह भी बताया गया कि दुख और तकलीफ के पारदर्शी पहलू होते हैं। कष्टदायक स्थिति में धैर्य और सब्र रखने को इस्लाम

में बहुत सम्मान दिया गया है। उन्हें प्रलय के दिन भी इनाम दिया जाएगा- "...जिन लोगों ने अच्छा कर दिखाया, उनके लिए इस संसार में अच्छाई है, और अल्लाह की धरती विस्तृत है। जमे रहने वालों को तो उनका बदला बेहिसाब मिलकर रहेगा।" कुरआन (३९, १०)"... और "जो मुसीबत भी तुझ पर पड़े, उस पर धैर्य से काम ले। निस्संदेह यह उन कामों में से है, जो अनिवार्य और दृढ संकल्प के काम हैं।" कुरआन (३१, १७)

पैगंबर मुहम्मद (सल्ल.) ने कहा कि जब अल्लाह को मानने वाला दुखों से घिरा हो, उसे कांटों की चुभन से भी ज्यादा कष्ट का अहसास हो रहा हो, तब अल्लाह उसके सारे गुनाहों को माफ कर देगा और उसके पाप इस तरह झड़ जाएंगे, जैसे (पतझड़में) वृक्षों की पत्तियां झड़ जाती हैं।

जब दुखों को रोकने के उपाय नाकाम होने लगें, तब अल्लाह का ध्यान करने वाले उसकी ओर उन्मुख होते हैं, क्योंकि उन्हें पता है इस कष्ट के बदले उन्हें मौत के बाद वाले वास्तविक और अनंत जीवन में बड़ा प्रतिफल मिलने वाला है। ऐसे में जो लोग अल्लाह की ओर उन्मुख नहीं होते, उन्हें ऐसे ही छोड़ दिया जाता है और इच्छा मृत्यु पाने वालों के लिए तो किसी प्रकार का प्रतिफल नहीं है।

आर्थिक कारण- यह कोई प्रश्न नहीं है कि ऐसी बीमारियां जिनका महंगा इलाज सारी उम्र चलता रहे और बुढापे की चिंता इतनी बढ़ती जा रही हो तो इच्छा मृत्यु समर्थक समूह 'मृत्यु का अधिकार' से आगे बढ़कर 'मृत्यु का कर्तव्य' की बात करने लगें। उनका मानना है कि मानव मशीन का उत्पादन चक्र पूर्ण हो चुका हो और उसका रख-रखाव उत्पादनकर्ता समाज पर बोझ बन गया हो, तब उसे मृत्यु के हवाले कर देना चाहिए। बजाय इसके कि उसका शरीर धीरे-धीरे नष्ट हो।[२१]

यह तर्क इस्लाम के लिए एकदम अस्वीकार्य है। मानव मूल्य आर्थिक हितों से ज्यादा महत्वपूर्ण होते हैं। बूढों और कमजोरों की मदद करना, उनका ध्यान रखना अपने-आप में बहुत महत्व रखता है, जिसके लिए लोगों को स्वेच्छा से समय देना चाहिए। निज प्रयास और धन भी उसमें लगाना चाहिए। यह जज्बा शुरू होता है माता-पिता की सेवा से- "तुम्हारे रब ने फैसला कर दिया

है कि उसके सिवा किसी की बंदगी न करो और मां-बाप के साथ अच्छा व्यवहार करो। यदि उनमें से कोई एक या दोनों ही तुम्हारे सामने बुढ़ापे को पहुंच जाएं तो उन्हें 'ऊंह' तक न कहो और न उन्हें झिड़को, बल्कि उनसे शिष्टतापूर्वक बात करो और उनके आगे दयालुता से नम्रता की भुजाएं बिछाए रखो और कहो- "मेरे रब! जिस प्रकार उन्होंने बाल्यकाल में मुझे पाला है, तू भी उन पर दया कर।" जो कुछ तुम्हारे जी में है उसे तुम्हारा रब भली-भांति जानता है। यदि तुम सुयोग्य और अच्छे हुए तो निश्चय ही वह भी ऐसे रुजू करने वालों के लिए बड़ा क्षमाशील है।" कुरआन (१७, २३-२५) माता-पिता की इस सेवा का बदला अल्लाह दुनिया में और आखिरत में भी देगा। अल्लाह के मानने वाले इसे साधारण खर्च करना नहीं समझते। उनके लिए यह एक फलदायी निवेश है, जिसका लाभ उन्हें आखिरत में मिलेगा। उपरोक्त तथ्य भौतिकवाद पर आधारित समाज में कोई मायने नहीं रखता है, लेकिन नैतिक मूल्य और आस्था रखने वालों के लिए यह स्वीकार्य है।

बुजुर्गों के जरूरी संरक्षण का कार्य जब व्यक्तिगत तौर पर संभव नहीं हो तो इस्लामी शिक्षाओं के तहत यह सारे समाज का दायित्व बन जाता है। इस तरह आर्थिक प्राथमिकताओं में फेरबदल कर अन्य संसाधनों से आनंद प्राप्त करने के बजाय नैतिक मूल्यों पर आधारित सेवा कर पुण्य लाभ कमाया जा सकता है। इस बाबत पहली आवश्यकता यह है कि समाज को पूर्ण रूप से नैतिक व आध्यात्मिक कर्तव्यों की ओर उन्मुख किया जाए।

क्लीनिकल परिस्थितियां- इस्लामी व्यवस्था में इच्छा मृत्यु का विचार ही पैदा नहीं होता। अगर होता भी है तो इसे रद्द कर दिया जाता है कि यह धार्मिक रूप से निषिद्ध है। इस बाबत परिजनों व मित्रों के साथ धार्मिक व आध्यात्मिक व्यक्तित्वों द्वारा भी रोगी को हरसंभव मानसिक संबल दिया जाता है। डॉक्टर्स भी इसमें सहभागी होते हैं तथा वे दर्द निवारक उपाय करते रहते हैं। डॉक्टरों द्वारा आवश्यक दर्द निवारक औषधि सीमित मात्रा में दिए जाने या इसकी मात्रा जानलेवा हद तक बढ़ाने को लेकर एक उलझन पैदा हो जाती है। औषधि की मात्रा बढ़ा देने से रोगी की जान जा सकती है। इसमें डॉक्टर का इरादा पता नहीं चलता कि वह रोगी को दर्द से छुटकारा दिलाना चाहता था या जान-बूझकर दवा के जरिये उसे मौत के मुंह में सुला दिया गया है। धार्मिक रूप से डॉक्टर का इरादा गंभीर मसला है, कि वह रोगी को दर्द से छुटकारा दिलाना

चाहता था या उसे मौत देना चाहता था? कानून के जरिये इरादे का पता नहीं चल सकता है लेकिन हम पर सदैव नजर रखने वाले अल्लाह से ऐसे लोग बच नहीं सकते। कुरआन के अनुसार- "वह निगाहों की चोरी तक को जानता है और उसे भी जो सीने छुपा रहे होते हैं।" कुरआन (४०, १९) सिद्ध नहीं हो पाने वाले गुनाह कानूनी रूप से अपराध भले न हों, लेकिन अल्लाह के यहां उनका हिसाब किया जाएगा।

बीमारियों का उचित उपचार इस्लाम में अनिवार्य है। इस बाबत हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने दो बातें कही हैं- "हर बीमारी का इलाज है और हर बीमारी का इलाज करो। अल्लाह ने हर बीमारी का इलाज भी पैदा किया है।" और "तुम्हारे शरीर का तुम पर अधिकार है।" लेकिन जब उपचार का कोई प्रभाव न हो, तो उसे छोड़ दो। शल्य क्रिया और दवाओं का इस्तेमाल, उपचार के इन दोनों तरीकों पर यह बात लागू होती है, जिन्हें इस्लामी विद्वानों की बहुसंख्या कृत्रिम सजावटी उपकरण कहती है। हर जीवित व्यक्ति का अधिकार दैनंदिन आवश्यकताओं से संबंधित वस्तुओं को उपचार से इतर परिभाषित किया गया है। इसके अंतर्गत खाना-पीना और सामान्य देखभाल आते हैं, जो रोगी के जीवनकाल तक स्थगित नहीं किए जा सकते हैं।

'द इस्लामिक कोड ऑफ मेडिकल एथिक्स' (पृ. ६७) के अनुसार- "आदमी और औरत का जीवन बचाने के प्रयास करते समय चिकित्सक को अपनी सीमाएं नहीं लांघनी चाहिए। वैज्ञानिक तौर पर यह पुष्ट है कि मृत्यु के बाद व्यक्ति को दोबारा जीवित नहीं किया जा सकता, इसलिए मृतक के शरीर को फ्रीज करके या किसी अन्य कृत्रिम तरीके से संरक्षित रखे जाने के प्रयास नहीं करने चाहिए। डॉक्टरों का काम जीवन चक्र को संरक्षित करना है, न कि मृत्यु का। किसी भी हाल में रोगी का जीवन समाप्त करने संबंधी कदम उठाने पर चिकित्सक को सकारात्मक रुख नहीं अपनाना चाहिए।

टिप्पणी

इच्छा मृत्यु पर विमर्श किसी भी समुदाय की चिंतन परंपरा से अलग हटकर नहीं किया सकता। एक अल्लाह को मानने और शरीअत का पालन करने वाले मुसलमान भी इस बाबत विभिन्न

विचार रखते हैं, जिस तरह अल्लाह को न मानने या उसे सीमित रूप में मानने वाले। वर्तमान क्रिश्चिनियटी में राज्य और चर्च को अलग करने की अवधारणा का एक उद्देश्य मानवीय मामलात से अल्लाह को बाहर रखना भी है। हालांकि ये दोनों धारणाएं समान नहीं हैं।

उच्च स्तरीय चिकित्सा शास्त्रियों ने यह स्वीकार कर लिया है कि २०वीं शताब्दी के नाजी जर्मनी शिविरों में इच्छा मृत्यु का प्रयोग आंख खोलने वाला रहा। एक बार यह तय कर लेने के आधार पर कि «कोई अब जीवन जीने लायक नहीं है» ऐसे निर्णय लिए जाते हैं जो मनुष्य के लिए विभिन्न प्रकार की पीड़ाएं और यातनाएं लाते हैं। इच्छा मृत्यु समर्थक नीदरलैंड्स में इकट्ठा होकर यूरोप और अमेरिका को निशाना बना रहे हैं। इसका विरोधी पक्ष प्रश्न कर रहा है कि वे लोग जो लाइलाज बीमारी से ग्रसित होकर भयंकर तनाव झेल रहे हैं, उनके परिजन भी इस बीमारी के कारण मानसिक व आर्थिक रूप से परेशान हैं। ऐसे में उनसे यह सहमति लेना कि वे अपने परिजन को इच्छा मृत्यु का अधिकार दे दें, उन पर एक तरह का जुल्म ही है। इन दोनों पक्षों के बीच युद्ध रेखा खिंच चुकी है और इसका क्या परिणाम आता है, यह देखा जाना बाकी है। परंतु इस्लाम अपनी धार्मिक व आध्यात्मिक शक्ति के बल पर इस विवाद से दूर है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग

कुरआन में आए वाक्यांश ‹अल्लाह की संरचना (मानव) बदल सकती है› के आधार पर जेनेटिक इंजीनियरिंग का विषय इस्लामी विद्वानों को प्रभावित करता रहा है। कुरआन के अनुसार शैतान ने आदम व हव्वा को वर्जित फल खाने के लिए बहकाया, फिर दोनों ने पश्चाताप किया, जिस पर अल्लाह की ओर से उन्हें माफी मिली। पश्चाताप को अल्लाह ने स्वीकार कर उन्हें धरती पर अपने आज्ञाकारी इंसानों की आबादी बसाने के अभियान पर भेज दिया। यह देख शैतान व्याकुल हो गया। उसने अल्लाह से एक मौका और मांगा यह दिखाने के लिए कि इंसान वास्तव में भरोसे के काबिल नहीं है। अल्लाह की ओर से इंसानों को बहकाने (यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि शैतान उन्हीं को बहकाता है, जो उसकी राह पर चलते हैं) की आज्ञा मिल जाने के बाद शैतान ने अपनी चंद योजनाएं बताईं, जिस पर अल्लाह की फटकार है। उसने कहा

था- «मैं तेरे बंदों में से एक निश्चित हिस्सा लेकर रहूंगा। और उन्हें अवश्य ही भटकाऊंगा और उन्हें कामनाओं में उलझाऊंगा, और उन्हें हुक्म दूंगा तो वे चौपायों के कान फाड़ेंगे, और उन्हें मैं सुझाव दूंगा तो वे अल्लाह की संरचना में परिवर्तन करेंगे।» कुरआन (०४. ११८-११९) इस आयत ने इस्लामी विद्वानों व चिकित्सा शास्त्रियों को जेनेटिक इंजीनियरिंग संबंधी मुद्दों पर बहुत गहरे तक प्रभावित किया। उदाहरणार्थ यह लिंग परिवर्तन के लिए किए जाने वाले ऑपरेशंस की ओर भी संकेत करती है, जिनके द्वारा पुरुष खुद को महिला और महिलाएं खुद को पुरुष रूप में ढालने के प्रयत्न करती हैं। यह आयत जहां जेनेटिक इंजीनियरिंग का एक तरह से समर्थन करती है, वहीं वह इस पर पाबंदी लगाने जैसा कोई सख्त निर्णय नहीं सुनाती।

जेनेटिक इंजीनियरिंग के विकास के साथ इससे जुड़े बहुत से नैतिक मुद्दे भी उठाए जाते रहे हैं। डीएनए के संयोजन से विषाणु का निर्माण और युद्ध में उनके उपयोग जैसे गंभीर मुद्दे सत्तर के दशक में चर्चा में आते रहे। इस तरह के प्रयोग पूरी तरह गलत ही थे। जेनेटिक बीमारियों का पता लगाना, उन्हें ठीक करना और रोकथाम के काम करना न सिर्फ स्वीकार्य हैं, बल्कि इसका उत्साहवर्धन किया जाना चाहिए। ट्रांस्प्लांटेशन सर्जरी के लिए जीन प्रत्यारोपण आवश्यक है। कई बीमारियों के लिए जेनेटिक इंजीनियरिंग में फार्मास्यूटिकल संभावनाएं छुपी हुई हैं, जिनसे अचरजकारी परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। इसके साथ ही कृषि व पशु पालन के क्षेत्रों में भी इससे संबंधित असीम संभावनाएं हैं।

इस तकनीक से प्राप्त अप्रत्याशित परिणाम चिंताओं का केंद्र बिंदु हैं। न सिर्फ सोमेटिक सेल्स में बल्कि जर्म सेल्स में नवीन जींस का प्रत्यारोपण आगामी नस्लों को प्रभावित कर सकता है। यह इतना गंभीर मामला है कि कभी-कभी एटमिक रेडिएशन के खतरे भी इसके आगे हल्के महसूस होते हैं।

एक प्रजाति से दूसरी में जेनेटिक मटेरियल का प्रवेश कराने का अर्थ दोनों के लक्षण युक्त एक नई प्रजाति उत्पन्न करना है। अगर इसमें जरा-सी भी चूक हो गई तो गंभीर समस्याएं खड़ी हो जाएंगी। उदाहरणार्थ, ऐसे प्रयोगों से ऐसी अंजान वस्तुएं सामने आ सकती हैं, जिन्हें अभी समझा जाना है। मानव संसार का सामना ऐसे जीवन से हो सकता है, जिसे स्थूल रूप में अभी समझा जाना

है। ऐसे में वैज्ञानिक भले सोचते रहें कि स्थिति नियंत्रण में है, लेकिन ऐसा होगा नहीं। मानव संतति में ऐसा रद्दोबदल बीमारियों से लड़ने में कारगर होने के साथ उससे आगे बढ़कर शारीरिक रूप से इच्छित बदलाव की ओर ले जाएगा, जिससे धनी वर्ग के लोग खुद में मनमाना बदलाव कराएंगे। उससे ज्यादा बुरा यह होगा कि ऐसे लोग जींस के माध्यम से अपने व्यवहार में भी परिवर्तन करा लेंगे, जो बहुत भयावह होगा। मानव व्यक्तित्व से और व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायित्व निर्वहन की इसकी क्षमता के साथ छेड़छाड़ की इस्लाम भर्त्सना करता है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग की तकनीक में भारी पूंजी निवेश करना पड़ता है। इससे निवेशकर्ता भी भारी मुनाफा कमाने की इच्छा रखेंगे। इसके माध्यम से कई वैज्ञानिक अपने महलों को सोने के महलों में तब्दील कर चुके हैं। यह सिलसिला जारी है और व्यापारिक गोपनीयता की परोपकारी सोच के साथ जीवन के विभिन्न रूपों का पेटेंट करा लेंगे। शायद यह समय है जेनेटिक इंजीनियरिंग पर आमजन में बहस का और इससे संबंधित नैतिक नियमावली तैयार करने का। एक लंबी कहानी इंतजार में है, क्योंकि अभी तो सिर्फ शुरुआत ही हुई है।

संदर्भ

१४. अप्रैल १९९२

१५. वर्ल्ड हेल्थ फोरम, अंक १४, १९९३, पृ. १०५।

१६. माइकल हेंडरसन द्वारा उद्धृत, होप फॉर ए चैंज, (सेलमः ग्रॉसवेनर बुक्स, १९९१), २४।

१७. नेशनल आर्काइव्ज। नेशनल सिक्योरिटी स्टडी मेमोरेन्डम 200 की फाइल, आरजी २७३।

१८. तीसरी दुनिया के देशों का सामान्य परिदृश्य, जहां आबादी का एक बड़ा भाग युवा है। जन्मदर अधिक है और विकसित देशों की तुलना में निम्नस्तरीय जीवन जीने की मजबूरी है। (सं.)

१९. कीथ एल वुडवार्ड एट एल, 'गेज इन द कलर्जी,' न्यूज वीक, २३ फरवरी १९८७, पृ ५८।

२०. इस्लामिक कोड ऑफ मेडिकल एथिक्स (कुवैतः इस्लामिक ऑर्गनाइजेशन ऑफ मेडिकल साइंसेज, १९८१), पृ. ६५।

२१. अटाली जैकस। ला मेडिसिन इम एक्युजेशन। माइकल सोलोमन ने पेरिस से १९८१ में प्रकाशित 'एल' अवेनीर डी ला वाई में प्रकाशित किया। पृ. २७३-२७५।

उपसंहार

दूसरी किताबों की तरह अगर इस किताब को भी पढ़कर एक तरफ रख दिया गया तो यह बहुत शर्मनाक होगा, बल्कि विवेकशील पाठकों ने मेरे लिखे हर शब्द को ग्रहण भी कर लिया तो भी मैं अपने उद्देश्य में असफल रहूंगा। इस किताब के माध्यम से अगर कोई विचार, कोई संवेदना जागृत न हुई, व्यवहार में कोई बदलाव नहीं आया तो मेरी सारी मेहनत निष्फल रही। जब तक कि ज्ञान का यह सिलसिला लगातार आगे न बढ़ने लगे, तब तक मेरा मिशन अधूरा ही रहेगा।

खालीपन को दिल बर्दाश्त नहीं कर पाता, इसे प्रेम से भरा होना चाहिए। जीवन भर के अध्ययन के बाद इस बुढापे में इस्लामिक आस्था और अंतर्ज्ञान की बदौलत मेरा दिल प्रेम से लबरेज हो रहा है। यह अनछुआ प्रेम किसी व्यक्ति विशेष के नाम नहीं है। मुझे प्रेम हो गया है मानव मात्र से, पशु, पक्षियों, पेड़ों, वस्तुओं, इस धरा और ब्रह्मांड से, जिसमें हम रहते-बसते हैं। और दिल की गहराइयों से मैं चाहता हूं कि प्रेम का यह संक्रमण सारे संसार में फैल जाए।

राजनीति, अर्थ शास्त्र, उद्योग, मैनेजमेंट, मजदूरी, व्यापार यहां तक कि युद्ध भी प्रेम का बदल नहीं हो सकता। लेकिन लोगों के कर्म लगभग हमेशा उनके व्यवहार पर आधारित होते हैं, इसीलिए वे अक्सर स्वार्थ, लोभ, सांप्रदायिकता और असंवेदनशीलता से भरे होते हैं, व्यक्तिगत रूप से भी और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी। अगर इसमें कुछ परिवर्तन होता है तो सबको खुशी होगी, उन्हें भी जिन्होंने सबको देख कर अपनी जीवन शैली तक का बलिदान कर दिया है।

प्रेम के दर्शन शास्त्र में आंतरिक प्रेरणा कोई नई बात नहीं है, लेकिन हमारे समय के अधिकांश लोग इसे आसानी से स्वीकार नहीं करते। यह धर्म और जाति के बंधन से ऊपर है। यह महत्वपूर्ण होगा कि

इसके अनुयायी बाहर निकलें और एक-दूसरे को साथ लेकर आगे बढ़ें। अगर भलाई की राह में यह कदम यूंही बढ़ते रहें तो इन प्रेम पथिकों की संख्या कम होने से भी कोई अंतर नहीं पड़ेगा। भौतिकवादी विचारों और नास्तिकता के छल से लोग ऊब गए हैं। आध्यात्मिकता के प्रति लोगों की प्यास बढ़ी है, जिसे तृप्त किया जाना चाहिए। जीवन में भलाई और शालीनता के लिए यदि कुछ लोग कड़ी मेहनत को तैयार हैं तो सिर्फ एक कदम उठाने भर की देर है। इसके बाद वे निश्चित ही एक कारवां में बदल जाएंगे। संसार बदल सकता है, लेकिन यह कर्मठ और निःस्वार्थ भाव के बिना नहीं बदलेगा।

मैं इसे इस्लामी दुआ के साथ समाप्त करता हूं- ‹आप पर अल्लाह की कृपा हो।›

शब्दावली

अल्लाह- एक ईश्वर का अरबी नाम। इस ब्रह्मांड का रचयिता व मालिक। आदम, नूह, इब्राहीम, मूसा, ईसा (अ.), मुहम्मद और अन्य तमाम पैगंबरों का आराध्य।

अल्लाहू अकबर- अल्लाह संसार की तमाम वस्तुओं से महान है। अजान में विशेष रूप से कहा जाने वाला तथा अल्लाह को कभी भी याद करने के लिए कहा जाने वाला शब्द।

ईद- इस्लाम के सालाना त्योहार। मुसलमानों को दो ईदें दी गई हैं। पहली ईद रमजान के रोजे पूरे करने की खुशी में मनाई जाती है। दूसरी पैगंबर हजरत इब्राहीम (अ.) द्वारा अल्लाह के आदेशों का पालन करने की याद में। इन दोनों ईदों पर सामूहिक रूप से विशेष इबादतें व प्रार्थनाएं की जाती हैं। दान-पुण्य किया जाता है तथा संबंधियों के साथ मिलकर उत्सव मनाया जाता है।

हदीस- पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के प्रामाणिक कथन व कर्म जिन्हें उनके साथियों ने याद किया व लिखित रूप में सुरक्षित रखा। बाद में हदीस के कई संग्रह प्रकाशित हुए। इनमें से 'सही बुखारी' व 'मुस्लिम' अधिक प्रामाणिक हैं। इनके अलावा अन्य प्रामाणिक संग्रहों में 'मुवत्ता', 'अन-निसाई', 'इब्ने माजा', 'तिरमिजी' और 'अबू दाउद' हैं। यदा-कदा 'परंपरा' के रूप में भी प्रस्तुत की जाने वाली 'हदीस', कुरआन के बाद इस्लामी विधि का दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत है। हदीसों को वैज्ञानिक आधार पर सतत् शोध के बाद जमा किया गया है। इसकी जवाबदारी उनकी होती है, जिन्होंने हदीस प्रस्तुत की है।

हज- तीर्थयात्रा। इस्लामी माह जिलहिज्ज में की जाने वाली यात्रा। सऊदी अरब के शहर 'मक्का' में स्थित 'काबा' व आसपास के क्षेत्रों में हज अदा किया जाता है। दुनिया की इस सबसे पहली

इबादतगाह काबे का निर्माण हजरत इब्राहीम (अ.) और उनके बेटे हजरत इस्माईल (अ.) ने किया था। बलिदान के त्योहार (ईदुज्जुहा) की सामूहिक दावतों के साथ हज संपन्न होता है। आर्थिक व शारीरिक रूप से समर्थ मुसलमानों के लिए जीवन में एक बार हज यात्रा अनिवार्य है।

इज्तिहाद- (साहित्यिक)। किसी ऐसी नवीन समस्या के बारे में पूर्णतः विचार कर रास्ता खोजना, जिसकी बाबत इस्लाम के आधार स्रोत कुरआन और सुन्नत में स्पष्ट दिशा निर्देश न हों।

इमाम- सामूहिक इबादत विशेषकर नमाज का नेतृत्व करने वाला, नमाज पढ़ाने वाला। किसी समुदाय का निर्वाचित नेता।

इंजील- इस्राईल की संतानों के मार्गदर्शन हेतु अल्लाह द्वारा जीसस (हजरत ईसा अ.) पर अवतरित की गई पुस्तक। यह अपने मौलिक रूप में नहीं बची, हो सकता है, इसके कुछ मौलिक भाग गोस्पेल्स में सुरक्षित हों।

इस्लाम- (सा.) पूर्ण समर्पण, हथियार डाल देना। इस्लाम का अर्थ आदेश पालन और अल्लाह के समक्ष पूर्ण समर्पण है। इस्लाम का अर्थ 'शांति' भी है। वास्तव में अल्लाह के आदेशों का पालन कर ही इंसान आत्मशांति व ब्रह्मांड की अन्य वस्तुओं के साथ शांति पा सकता है। इस्लाम को मानने वाले मुस्लिम व मुसलमान हैं। कुरआन बताता है कि मानव की रचना के बाद से आए अल्लाह के सारे पैगंबर मुस्लिम थे। उन्होंने मानवता को इस्लाम का या दूसरे शब्दों में शांति व अल्लाह के आदेश मानने का संदेश दिया।

जिहाद- (सा.) संघर्ष। अल्लाह की राह में संघर्ष करना। चाहे वह सीधे किसी के नैतिक या चारित्रिक सुधार के लिए हो, या समाज में फैल रहे शैतानी कामों को रोकने व भलाई फैलाने के लिए विस्तृत संघर्ष हो। अल्लाह की बात फैलाने के लिए यह संघर्ष शांतिपूर्वक व सुंदर ढंग से हो लेकिन अन्याय या जनता पर आततायियों के अत्याचार का निवारण करने के लिए बल प्रयोग भी किया जा सकता है। मानवाधिकार हनन, विचार, आस्था व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन होने पर भी इसके खिलाफ संघर्ष।

काबा- *(सा.)* मक्का में हजरत इब्राहीम (अ.) व इस्माईल (अ.) द्वारा बनाई गई दुनिया की पहली मस्जिद। एक घनाकार इमारत,

जो अल्लाह की इबादत के लिए बनाई गई है।

कुरआन- समस्त मानवता के मार्गदर्शन के लिए अल्लाह की अंतिम किताब व विशेष कृपा। यह अल्लाह द्वारा अवतरण की पुष्टि कर उसे प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करता है। अल्लाह की इबादत के लिए इंसानों का पथ प्रदर्शक, मानवता को मानवीय संदेश की प्राकृतिक राह दिखाने वाला। धरती पर मानव जीवन की वास्तविकता और हमारे आगमन का उद्देश्य बताने वाला। कुरआन हजरत मुहम्मद (सल्ल.) पर अल्लाह के फरिश्ते जिब्राईल के माध्यम से २३ साल की अवधि में अवतरित हुआ।

रमजान- इस्लामी कैलेंडर का नवां महीना। रमजान में वयस्क व स्वस्थ मुसलमान अल्लाह के हुक्म से रोजे रखते हैं। इस दौरान सूर्योदय से सूर्यास्त तक खाने-पीने और दांपत्य संबंध बनाने की मनाही है। अल्लाह की कृपा से रमजान हर बार पिछले साल से ११ दिन पहले आते हैं, ताकि न तो पूर्वी, न पश्चिमी भूभाग के लोगों को सदैव लंबे या थोड़े समय के लिए रोजे रखने पड़ें।

सलाह (नमाज)- इस्लाम में पांच वक्त की नमाज पढ़ना अनिवार्य हैं। इसमें मुसलमान कुरआन के कुछ भाग पढ़ते, रब के सामने झुकते और धरती पर माथा टेककर अल्लाह को सज्दा करते हैं। नमाज के माध्यम से मुसलमान रोजाना उस सृष्टिकर्ता से संवाद करते हैं। इससे उन्हें अपनी उच्चतम नैतिकता और जीवन के आध्यात्मिक मिशन का भान रहता है।

सौम (रोजा)- रमजान माह में मुसलमानों को रोजे रखना अनिवार्य हैं, जबकि साल के बाकी हिस्सों में यह स्वैच्छिक हैं। रोजे मुसलमानों को अल्लाह के आदेशों का पालन करने में समर्थ बनाते हैं। इनके माध्यम से वे कठिन समय में सब्र करना और गरीबों का दुख-दर्द समझते हैं। इबादत के रूप में रोजा एक गहन आध्यात्मिक अनुभव है, जो कर्तव्यनिष्ठ मुसलमानों को रब से अपना संबंध और प्रगाढ़ करने का मौका देता है।

शहादत (कलमा)- अपनी आस्था की घोषणा। यह वक्तव्य कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं है और हजरत मुहम्मद (सल्ल.) अल्लाह के बंदे और उसके पैगंबर हैं। मुसलमान होने के लिए सच्चे दिल से कलमा पढ़कर उसका स्वीकार्य आवश्यक है।

शरीअत- इस्लामिक विधि। कुरआन व हजरत मुहम्मद (सल्ल.) की सुन्नतों पर आधारित। आधुनिक युग की कोई समस्या का हल इन दोनों में न मिलने पर 'इज्तिहाद' (नवाचार) का रास्ता भी शरीअत में मौजूद है।

शिया (सा.)- अपने विचारों के कट्टर समर्थक। मुसलमानों का अल्पसंख्यक समूह, जिसका मानना है कि पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के चचेरे भाई और दामाद हजरत अली (रदिअल्लाहु तआला अन्हू) पैगंबर साहब के सही अर्थों में जानशीन थे, न कि इस्लाम के पहले खलीफा हजरत अबु बक्र (रदि.) या कोई अन्य। बाकी तमाम आधारभूत सिद्धांतों में मुसलमानों से समानता रखने के बावजूद इन्होंने अपनी पहचान अलग धार्मिक समूह के रूप में बना रखी है।

शूराः सलाहकार परिषद। कुरआन में मुसलमानों को आदेशित किया गया है कि वे अपने निर्णय शूरा के माध्यम से लें। आमजन की राय से शूरा के लिए नेता चयनित किए जाएं, जो अपने चुनने वालों के अधिकारों की रक्षा करें। शूरा के जरिये लिए गए निर्णयों का पालन मुस्लिम सरकार द्वारा किया जाना जरूरी है। इस्लाम में तानाशाही का कोई स्थान नहीं है।

सुन्नत (सा.)- 'अभ्यास' या 'उदाहरण।' हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के कर्म व कथन। इस्लामिक विधि (शरीअत) का मुख्य स्रोत।

वजू- हर नमाज मुसलमानों के लिए अल्लाह से सीधा संवाद है। इसकी तैयारी के लिए वे नमाज से वजू करके शारीरिक व मानसिक रूप से पवित्र होते हैं। वजू में शुद्ध जल से कोहनियों तक हाथ, मुंह व पैर धोए जाते हैं तथा सिर व गर्दन गीले हाथों से साफ किए जाते हैं।

जकात (सा.)- पवित्रता और वृद्धि। अपनी आवश्यकता से अधिक धन रखने वाले मुसलमानों के लिए जकात देना अनिवार्य है। उन्हें प्रतिवर्ष अपने धन का ढाई प्रतिशत भाग गरीबों के लिए निकालना होता है।

वैश्विक स्तर पर स्थापित हो चुकी धारणाओं को बदलने के लिए कभी-कभी ही कोई पुस्तक आ पाती है। एक समय में एक ही बार। 'मुस्लिम मानस का अध्ययन' ऐसी ही पुस्तक है। लेखक डॉ. हस्सान हतहूत ने पुस्तक को एक सामान्य परिचय से प्रारंभ किया। बहुसांस्कृतीय परिवेश (मिस्र में जन्म, ब्रिटेन में निवास के बाद अमेरिका में भी एक दशक से ज्यादा निवास) में जीवन व्यतीत करने वाले पेशे से फीजीशियन इस लेखक का अनुभव रहा कि 'पश्चिम में इस्लाम इसके लिए जाना जाता है, जो वह है नहीं।'

एंसाइक्लोपीडियाई व्यक्तित्व के धनी (डॉक्टर ऑफ मेडिसिन, विचारक, वक्ता व कवि) डॉ. हतहूत ने अपनी इस पुस्तक के द्वारा पाठकों को इस्लाम से बखूबी परीचित कराया है। इस जानकारीपरक व आनंददायक यात्रा में उन्होंने इस्लामी जीवन का सूक्ष्मता से निरीक्षण कर सुंदर झांकी प्रस्तुत की है। इसमें वे पारदर्शिता के साथ मुस्लिम अंतर्मन का चित्रांकन करते हुए उनकी मनःस्थिति, तर्क व अल्लाह के प्रति उनकी आस्था का विषद विवेचन करने में सफल रहे हैं।

गैर मुस्लिमों के साथ उनके लिए भी जो डॉ. हतहूत के ज्यूडो-क्रिश्चियन-इस्लामी विश्व की परिकल्पना से सहमति रखते हैं, यह यात्रा आकर्षक व विचारोत्तेजक सिद्ध होगी। मुसलमानों के लिए यह उनकी आस्था को और संपुष्ट करने वाली तथा उन प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करने वाली है, जिनका इस दौर में उन्हें हर कदम पर सामना करना पड़ता है।

'मुस्लिम मानस का अध्ययन' इस्लामी परिप्रेक्ष्य में हमारे समय के महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाती है। निज स्वार्थ, सूक्ष्म धार्मिकता और नास्तिकता के इस दौर में डॉ. हतहूत ने गंभीर और प्रेरणास्पद कार्य किया है। आशा से भरपूर अपने संदेश में डॉ. हतहूत विचार व्यक्त करते हैं कि उनके इस प्रयास से यदि थोड़े-बहुत लोग भी जागरूक होते और सहयोगी रुख अपनाते हैं तो परिवर्तन संभव है।

डॉ. हतहूत स्पष्ट करते हैं कि कोई वास्तव में वैसा ही है, जिसके लिए वह जाना जाता है, उसके आधारभूत मानवाधिकार हैं। तब यहां इस पुस्तक में इस्लाम वैसा ही है, जैसा कि वह वास्तव में है। और समूचा संसार वास्तव में वैसा ही हो सकता है।

पुस्तक की गंभीरता और स्पष्टवादिता को देख अमेरिकावासी जरूर सकारात्मक प्रतिसाद देंगे। पुस्तक कई बार हमें विचार करने पर विवश करती है।

- फ्रेंक वोगल, हार्वर्ड लॉ स्कूल

धार्मिक अध्ययन की कक्षाओं में (मेरी कक्षाओं में भी) यह पुस्तक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

- क्रियर डगलस, धार्मिक अध्ययन विभाग, कैलीफोर्निया स्टेट यूनिवर्सिटी, नार्थरिज

डॉ. हतहूत ने जीवंत विषयों पर चर्चा की है, जिन्हें किसी भी धर्म का कोई भी व्यक्ति अनदेखा नहीं कर सकता। ...वे पाठकों को उसी तरह के बौद्धिक विवेचन की ओर उन्मुख करते हैं, जैसा महान इस्लामी विद्वान इमाम गजाली (रह.) किया करते थे।

- सुलैमान न्यांग, होवार्ड यूनिवर्सिटी

मुस्लिम मानस का अध्ययन

हस्सान हतहूत

प्रस्तावना - अहमद ज़की यमनी

अमेरिकन ट्रस्ट पब्लिकेशंस

अमेरिकन ट्रस्ट पब्लिकेशंस, यूएसए

युनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका में मुद्रित

आवृत्तिः १९९६, १९९७, १९९८, २००१, २००२, २००३, २००५ और २००८

लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस की सूची में शामिल

लेखक – हतहूत, हस्सान

'रीडिंग द मुस्लिम माइंड', हस्सान हतहूत। अहमद ज़की यमनी की प्रस्तावना।

संदर्भ ग्रंथों के साथ

ISBN 0-89259- 156 - 0 – ISBN 0 - 89259 - 157 - 9 (pbk)

1. इस्लाम 1 टाइटल

BP 161.2.H84 1994

297 - dc20 94 . 46150 CIP

कवर– कवर पेज का इलस्ट्रेशन व डिजाइन स्वयं लेखक द्वारा।
इलेक्ट्रोएंकोफैलोग्राफिक ट्रेसिंग। पुस्तक के शीर्षक का प्रतीकात्मक प्रस्तुतिकरण।

उनके लिए जो प्रेम, सत्य और
मानवता के प्रति प्रतिबद्ध हैं।

आभार

इस पुस्तक के लिए सबसे पहले तो मैं रब का शुक्र अदा करता हूं। अत्यंत व्यस्तता के भ्रम और बीमारी के चलते मैं इसे लिखने के पक्के इरादे के बावजूद शायद यह काम पूरा नहीं कर पाता। कुरआन के मुताबिकः

...तो संभव है कि एक चीज तुम्हें पसंद न हो और अल्लाह उसमें बहुत कुछ भलाई रख दे। (४-१९)

पैगंबरे इस्लाम हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने कहा है – 'जो इंसानों का शुक्रिया अदा नहीं करता वह अल्लाह का शुक्र भी अदा नहीं करता।' इसलिए सबसे पहले महत्वपूर्ण संबल, प्रोत्साहन और सहयोग के लिए मैं अपनी धर्मपत्नी 'सैलोना' का आभार मानता हूं। यह मुझे अजीब भी लगता है क्योंकि तिरपन (५३) साल पहले हुए हमारे विवाह के बाद से यह परंपरा निरंतर चली आ रही है।

मैं अपने भाइयों, दोस्तों का भी आभारी हूं, जो मुझे लिखने के लिए प्रेरित करते रहे, यह वास्तविकता बताकर कि महत्वपूर्ण व उपयोगी व्याख्यानों के बावजूद लिखे हुए शब्द ज्यादा समय तक जिंदा रहते हैं। सो उनका आभार मानना आवश्यक है।

अभिन्न और आत्मीय मित्र श्रीमती कैरोल डी मार्स का मैं विशेष रूप से आभारी हूं। उन्होंने बड़ी मेहनत से मेरे काम की समीक्षा कर अमूल्य परामर्श दिए।

अपने प्रकाशक का भी मैं सदैव आभारी रहूंगा, जिन्होंने मेरा कार्य रुचिकर और सरल बना दिया।

और अंत में महत्वपूर्ण, मेरी सहयोगी कु. हेदब अलतारीफी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अनिवार्य है, जिन्होंने पांडुलिपि टाइपिंग के दौरान होते रहे लगातार फेरबदल के बावजूद पूरी तन्मयता से काम किया। अल्लाह इन सबको इसका फल दे।

-        हस्सान हतहूत

सूची

प्रस्तावना

- शेख अहमद ज़की यमनी*

विश्व के अन्य तमाम धर्मों की तुलना में इस्लाम कुछ अलग नजर आता है। वह इस तरह कि इसका नाम किसी जाति या किसी व्यक्ति विशेष पर आधारित नहीं है। जैसे जूडिज्म जूडिया से, क्रिश्चियनिट क्राइस्ट से बुद्धिज्म बुद्ध से निकले हैं। लेकिन इस्लाम पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्लाहु अलैहि व सल्लम) के नाम पर आधारित नहीं है। हालांकि कुछ ओरिएंटलिस्ट ने इसे 'मुहम्मडंस' और 'मुहम्मडनिज्म' के नाम देने की कोशिश जरूर की लेकिन न तो मुसलमानों ने इसे अपने मजहब के लिए पसंद किया, न खुद के लिए।

शब्द इस्लाम की व्युत्पत्ति दो शब्दों से हुई है। जो हैं 'तस्लीम' (समर्पण) और 'सलाम' (शांति)। इन दोनों शब्दों में इस्लाम का सार निहित है। यह मानव और उसके सृष्टिकर्ता यानी अल्लाह तथा मानव और मानव के बीच आपसी संबंधों की संपूर्ण व्याख्या करता है।

अल्लाह तआला और इंसानों के बीच संबंध उस संपूर्ण समर्पण पर आधारित है, जो इस कायनात के खालिक व मालिक और प्राणी मात्र के बीच स्थित है। शब्द इस्लाम के मायने ही पूर्ण समर्पण है। यह मायने इस्लाम के पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के जरिये लाए गए पैगाम तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि कुरआन में अनेक पैगंबरों का जिक्र मिलता है, जो हजरत मुहम्मद (सल्ल.) से पहले इस संसार में आए और इस्लाम का पैगाम दिया। पैगंबर

मुहम्मद (सल्ल.) के पूर्ववर्ती पैगंबर इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) और अन्य पैगंबरों का मजहब भी इस्लाम ही था। इस बाबत कुरआन कहता हैः

तुम्हारे बाप इब्राहीम के पंथ को तुम्हारे लिए पसंद किया। उसने (अल्लाह ने) इससे पहले तुम्हारा नाम मुस्लिम (आज्ञाकारी) रखा था और इस ध्येय से ताकि रसूल तुम पर गवाह हो और तुम लोगों पर गवाह हो। (२२-७८)

दूसरी ओर इंसानों के आपसी संबंध, शब्द इस्लाम के एक और अर्थ यानी 'शांति' से भी नियंत्रित होते हैं, जिसमें सहनशीलता और कृपा शामिल हैं। मुस्लिम के मायने समझाते हुए हमारे नबी हजरत मुहम्मद (सल्ल.) फरमाते हैं 'मुसलमान वह है जिसकी जुबान और हाथ से मुस्लिम सुरक्षित रहें।' पैगंबर मुहम्मद ने सहनशीलता व सहनशील लोगों की बहुत तारीफें भी की

हैं। वे कहते हैं 'सहनशील लोगों पर खुदा की मेहरबानी है, उनके लिए भी जो खरीदने-बेचने में भी सहनशील हैं।'

युद्ध के लिए पैगंबर (सल्ल.) ने जो कायदे बताए हैं, वे सेना के लिए नए विधान जैसे हैं। इनके अनुसार मुसलमान, गैर मुस्लिमों से तभी युद्ध करें, जब उन्हें विरोधियों की जानिब से धमकियां मिलें। इसी आधार पर अल्लाह की जानिब से मुसलमानों को युद्ध की इजाजत दी गई है। कुरआन के शब्दः सुन ली गई उन लोगों की बात जिनके विरुद्ध युद्ध किया जा रहा है, क्योंकि उन पर जुल्म किया गया। और निश्चय ही अल्लाह उनकी सहायता का पूरा सामर्थ्य रखता है।(२२-३९)

अमूमन मुस्लिमों व गैर मुस्लिमों के रिश्ते तथा खासकर मुस्लिमों व अह्ले किताब (वे कौमें जिनके पास आसमानी किताबें हैं, मसलन यहूदी, ईसाई। - अनुवादक) के रिश्ते बहुआयामी हैं। ये किसी परिचर्चा का विषय होने के बजाय इस प्रकार के रिश्तों से परीचित होने की मांग करते हैं। इस वक्त इतना ही कहना काफी होगा कि सहनशीलता और शांति, ये दो सिद्धांत इन रिश्तों को नियंत्रित करते हैं। कुरआन और हदीस (पैगंबर मुहम्मद (सल्ल.) के कर्म व कथन) में भी यही कहा गया है। इतिहास में जहां कहीं भी इन सिद्धांतों के विपरीत घटनाएं पाई जाती हैं, इस्लाम से उनका कोई संबंध नहीं है, वे मुसलमानों से संबंधित हैं। ठीक उसी तरह जैसे ईसाइयों का गैर ईसाइयत भरा व्यवहार उन्हीं से संबद्ध किया जाना चाहिए न कि हजरत ईसा (अ.) की शिक्षाओं से।

इस्लाम इस वास्तविकता से भी पहचाना जाता है कि मुसलमान जहां दूसरों के साथ शांति से रहे, वहीं यही शांति उसके अंतर्मन में भी होना चाहिए। यह भी अल्लाह के प्रति पूर्ण समर्पण का एक अनिवार्य प्रभाव है कि अल्लाह के आदेशों के सम्मुख मुसलमान खुद को पूरी तरह समर्पित कर दे। आध्यात्मिक व भौतिक जीवन के बीच आपसी सद्भाव व सहभागिता इस्लाम को विशिष्टता प्रदान करती है। इसीलिए तो मुसलमान अपनी आस्था व विश्वास के तहत भौतिक साधनों, सुविधाओं का उपभोग धार्मिक शिक्षाओं के अनुसार करता है।

इस्लामी विधान से परिचित लोग ऐसे मुसलमानों के व्यवहार व उनके कारोबार की सराहना करते हैं। इस्लाम में इबादत जुबानी व शारीरिक क्रियाकलापों पर आधारित है। इसका उद्देश्य आध्यात्मिक रूप से ईश्वर की ओर उन्मुख होने की पुष्टि करना व इस पर जोर देना है। मुसलमानों द्वारा रोजाना की जाने वाली इबादत 'नमाज' में कई शारीरिक क्रियाएं होती हैं। इनमें से 'रुकू' (झुककर दोनों हाथों से घुटने पकड़ना) अल्लाह तआला की महानता के आगे खुद कुछ नहीं होने का भाव प्रदर्शित करता है। उस समय विशेष रूप से यह शब्द 'प्रशंसा अल्लाह की जो महान है' कहे जाते हैं। इसी तरह 'सज्दे' की स्थिति है। इसमें धरती पर माथा टेककर सेवक उस सर्वशक्तिमान के सम्मुख पूर्ण रूप से नतमस्तक होने का भाव प्रकट करता है। उस समय विशेष रूप से पढ़े जाने वाले शब्द हैं 'प्रशंसा अल्लाह की जो सर्वश्रेष्ठ है।' यह क्रियाकलाप उस सर्वशक्तिमान सृष्टिकर्ता यानी अल्लाह की कृपा के प्रति मुसलमानों की

असीम आस्था व विश्वास तथा उसी अल्लाह की इबादत करने का भाव प्रकट करते हैं। रुकू में झुकना व सज्दे में माथा टेकना अल्लाह के प्रति मुसलमानों की असीम श्रद्धा दिखाते हैं। यह आस्था, श्रद्धा सिर्फ अल्लाह के लिए है, उसके अलावा अन्य कोई इसका पात्र नहीं है। कुरआन ने मुसलमानों को सिखाया है- हम तेरी ही बंदगी करते हैं और तुझी से मदद मांगते हैं।(१-४) जहां तक अन्य समुदायों के साथ मुसलमानों के व्यवहार का मामला है, उनकी आस्था उन्हें सबसे समान व्यवहार की सीख देती है।

मानव इतिहास ने अनेक सभ्यताएं देखी हैं। जैसे चीनी, फिरऔनी (फेरोनिक), यूनानी, पारसी और रोमन। यह इस्लामी सभ्यता का भी साक्षी है। इस्लाम से पूर्व की हर सभ्यता की कुछ न कुछ विशेषता रही है, जो इन्हें दूसरी सभ्यताओं से अलग करती है। जैसे यूनानी सभ्यता की पहचान उसका विशेष दर्शन है तो भवन निर्माण कला रोमन सभ्यता की विशेषता रही है। दूसरी ओर इस्लामी सभ्यता ने सभी क्षेत्रों में ज्ञान का उदय किया। इनमें चिकित्सा विज्ञान, ज्योतिष शास्त्र, रसायन शास्त्र, गणित व दर्शन शास्त्र के साथ ही स्थापत्य कला भी शामिल है। लेकिन इन सबसे महत्वपूर्ण तथ्य जो इस्लामी सभ्यता को पूर्ववर्ती सभ्यताओं में विशिष्ट बनाता है, वह इसका इतिहास सम्मत होना है। जैसे हम यह बता सकते हैं कि हजरत मुहम्मद (सल्ल.) पर 'वही' (ईश्वरीय संदेश) सातवीं सदी ईस्वी में अवतरित हुई। इसके विपरीत अन्य सभ्यताओं को पनपने में सदियां लगीं। उनके पास अपने प्रारंभिक समय के बारे में कोई प्रामाणिक जानकारियां नहीं हैं। अन्य सभ्यताएं शुरुआत में अपने सामाजिक परिवेश से भी कोई खास सरोकार नहीं रखती थीं।

सातवीं सदी में मक्कावासी अरबों का भी ज्ञान से कोई नाता नहीं था, सो वे ऐसी किसी सभ्यता की नींव नहीं रख सकते थे, जिसकी पहचान ही ज्ञान हो। यह तो पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) का संदेश ही था, जिसने उन्हें अपनी अज्ञानता से बाहर निकालकर निरंतर ज्ञान की ओर उन्मुख होते समाज में बदल डाला। इसी ईश्वरीय संदेश की मदद से पैगंबर मुहम्मद (सल्ल.) ने अल्प ज्ञानी अरबों को ऐसी दिशा दी कि वे उस समय प्रचलित ज्ञान की हर शाखा से न सिर्फ परिचित हुए बल्कि आने वाला इतिहास भी बदल डाला।

इसके लिए यह नहीं किया कि कुरआन और 'सुन्नत'[१] के माध्यम से प्राचीन अरब के सारे तौर-तरीके ही बदल डाले गए। पुराने रीत-रिवाजों में से कुछ स्वीकार्य रहे, कुछ में फेरबदल कर उन्हें नए इस्लामी विधान के अनुसार ढाल लिया गया।

निश्चित ही जो तौर-तरीके इस्लाम विरोधी थे, उन्हें चलन से बाहर कर दिया गया। उनमें से कुछ तरीके जो कुरआन व सुन्नत के मुताबिक नहीं थे, उनके लिए इस्लामी अध्येताओं और विधि विशेषज्ञों ने विशेष अध्ययन किए। इस अध्ययन के माध्यम से 'बद्दू' अरबों के कुछ प्राचीन तौर-तरीके 'शरई' (इस्लामी विधि सम्मत) हो गए।

हालांकि शरीअत का यह हिस्सा अपरिवर्तनीय नहीं माना गया और हर दौर के विद्वान विधि विशेषज्ञों की दृष्टि में हमेशा ही छानबीन का विषय रहा। यह

ऐसा मुद्दा है जो लंबी बहस व समीक्षा मांगता है, फिर भी पारिवारिक नियमों के एक या दो उदाहरण से शायद बात स्पष्ट हो सके।

इस्लाम पूर्व के अरब में पुरुषों को बहुविवाह तथा पत्नियों को तलाक देने का एकतरफा अधिकार प्राप्त था। एक व्यक्ति कई पत्नियां रख सकता था, उनमें से किसी को भी कभी भी तलाक दे सकता या बदल सकता था। इस पर किसी का नियंत्रण नहीं था। पैगंबर हजरत मुहम्मद के जीवन के पूर्वार्द्ध तक यही सब कुछ चलता रहा। बाद में इस्लाम ने एक से अधिक पत्नियां रखने पर अंकुश लगाते हुए इसे नियमबद्ध कर दिया। यह शर्त लगा दी कि एक से अधिक पत्नियां वही व्यक्ति रख सकता है, जो उनसे समान व्यवहार कर सके।

इसके बावजूद एक से ज्यादा पत्नियां रखने के इच्छुक पुरुषों के लिए अन्य नियम भी सख्त किए गए। जैसे अनाथ बच्चों की खातिर उनकी मां से विवाह करने वाले पुरुषों के लिए भी कई नियम हैं। इस बाबत कुरआन ने ऐसे लोगों को कड़ी चेतावनी दी है जो अनाथ बच्चों की संपत्ति देख उनकी मां से विवाह करने की इच्छा रखते हैं। जो लोग अनाथों का माल अन्याय के साथ खाते हैं, वास्तव में वे अपने पेट आग से भरते हैं, और वे अवश्य भड़कती हुई आग में पड़ेंगे। (४-१०)

वे मुसलमान जिनके सुपुर्द अनाथों की संपत्ति की गई है, उन्हें भी चेताया और डराया गया है कि यदि यह संपत्ति अनजाने में ही उनकी संपत्ति के साथ मिल गई और अनाथों को देने से इंकार किया गया तो पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ईश्वरीय विधि (शरीअत) के अनुसार ऐसे अनाथों को उनका अधिकार दिलाएंगे। इसे कुरआन की एक और आयत ऐसे स्पष्ट करती हैः

और यदि तुम्हें आशंका हो कि तुम अनाथों (अनाथ लड़कियों) के प्रति न्याय न कर सकोगे तो उनमें से, जो तुम्हें पसंद हों, दो-दो या तीन-तीन या चार-चार से विवाह कर लो। किंतु यदि तुम्हें आशंका हो कि तुम उनके साथ एक जैसा व्यवहार न कर सकोगे, तो फिर एक ही पर बस करो... (४-३)

यह खेदजनक है कि बहुविवाह के लिए कुरआन ने जो विधिक उदारता दिखाई है, मुसलमानों ने बहुधा उसका दुरुपयोग किया है। उन्होंने उन परिस्थितियों और चेतावनियों को लगभग अनदेखा कर दिया, जो बहुविवाह के संबंध में दी गई हैं। दुर्भाग्यपूर्ण तरीके से कुछ वर्ग के पुरुषों ने बहुविवाह की इजाजत को अनेक महिलाओं से यौन संबंध स्थापित करने का लाइसेंस मान लिया।

खासकर कई 'अरबवासियों' ने धनवान होने के बाद बहुविवाह की आज्ञा को अपवाद समझने के बजाय एक तरीका मान लिया। हालांकि वे एक समय में चार पत्नियों की सीमा से बाहर नहीं जाते थे लेकिन जब भी उनका मन पत्नी बदलने का होता वे किसी एक को फौरन तलाक दे देते। इस तरह वे शारीरिक सुख पाने के लिए तलाक का इस्तेमाल करते। यह जानते हुए भी कि विधिसम्मत होने के बावजूद पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने तलाक के बारे में कहा है कि 'यह जायज चीजों में से अल्लाह को सख्त नापसंद है।'

इसके अलावा कुरआन इस बारे में स्पष्ट करता है कि यह विधिसम्मत अप्रिय

कृत्य कैसे जीवन को प्रभावित करता है। वैवाहिक जीवन पर खतरा उत्पन्न होने लगे तब मध्यस्थों की सहायता से दंपति में सुलह का मार्ग निकालने के प्रयास किए जाने चाहिएः

और यदि तुम्हें पति-पत्नी के बीच बिगाड़ का भय हो, तो एक फैसला करने वाला पुरुष के लोगों में से और एक फैसला करने वाला स्त्री के लोगों में से नियुक्त करो। यदि वे दोनों सुधार करना चाहेंगे, तो अल्लाह उनके बीच अनुकूलता पैदा कर देगा... कुरआन (४-३५)

मध्यस्थों के प्रयास असफल होने की स्थिति में पति एक बार तलाक दे सकता है। इसके बाद तीन माह दस दिन की मोहलत दी जाए। इस दौरान पत्नी पति के घर में ही रहे, ताकि उसका जीवनसाथी यदि अपने निर्णय पर पुनर्विचार करना चाहे तो उसे इसका अवसर प्राप्त रहे।

वही कानूनी उपाय जो अल्लाह की नजरों में सख्त नापसंदीदा है। यदि तब भी बात नहीं बने तब एक तलाक प्रभावी मानी जाए। यह तलाक दो बार दी जा सकती है, लेकिन तीसरी बार भी इस तरह तलाक देने की नौबत आ जाए तो वह तत्काल प्रभावी होती है। पति-पत्नी तब सदा के लिए अलग हो जाते हैं, तब तक कि जब तक पत्नी किसी दूसरे व्यक्ति से निकाह न कर ले तथा वह व्यक्ति उसे तलाक न दे दे। कुरआन के शब्दः

तलाक दो बार है। फिर सामान्य नियम के अनुसार (स्त्री को) रोक लिया जाए या भले तरीके से विदा कर दिया जाए... (२-२२९)

(दो तलाकों के पश्चात) फिर यदि वह उसे तलाक दे दे, तो इसके पश्चात वह उसके लिए वैध न होगी, जब तक कि वह उसके अतिरिक्त किसी दूसरे पति से निकाह न कर ले। अतः यदि वह उसे तलाक दे दे तो फिर उन दोनों के लिए एक-दूसरे को पलट आने में कोई गुनाह न होगा, यदि वे समझते हों कि अल्लाह की सीमाओं पर कायम रह सकते हैं... (२-२३०)

इस बाबत कुरआन के स्पष्ट आदेश होने के बावजूद कभी-कभी पति तीनों तलाक एकसाथ दे देते हैं। कुछ मुस्लिम विद्वान तीन तलाकों के बीच दिए जाने वाले समय व एक बार में ही तीन तलाक को लेकर दुविधा में हैं। उनके अनुसार एक ही बार में तीन तलाक देने पर तीन तलाकों के बीच सोचने-विचारने का जो समय है, वह दंपत्ति को नहीं मिल पाता है।

जबकि इसके बारे में कुरआन में निर्देश दिए गए हैं। इसलिए एक ही बार में तीन तलाक को एक माना जाए या इसे तीन तलाक ही मान लिया जाए इसे लेकर दुविधा रहती है। इसीलिए द्वितीय खलीफ हजरत उमर इब्ने खत्ताब (रजि.) ने जब देखा कि लोग तलाक जैसे गंभीर मामले को हल्के-फुल्के में लेकर तीन तलाक एक साथ दे देते हैं तो उन्होंने उसे तीन तलाक ही मान लेने का फरमान जारी कर दिया।

इसके अलावा पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) की शिक्षा के अनुसार यह भी स्पष्ट किया गया कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में भी पुरुष अपनी पत्नी को

तलाक नहीं दे सकता, जैसे कि मासिक धर्म की अवस्था में या दो मासिक धर्मों के बीच यौन संबंध स्थापित हुआ हो तो इस दौरान (मासिक धर्म की अवस्था में यौन संबंध स्थापित करने की मनाही है।) तलाक नहीं दिया जा सकता। पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के साथी हजरत अब्दुल्लाह इब्न उमर ने यह नियम तोड़ा तो पैगंबर ने उन्हें वापस अपनी पत्नी के पास लौट जाने के निर्देश दिए।

ये ऐसे दुखद उदाहरण हैं, जो कुछ मुस्लिम समाज में प्रचलित हैं। ऐसे उदाहरणों से विश्लेषणकर्ताओं के एक वर्ग में हमारी विधिक व्यवस्था के प्रति संशय का भाव उत्पन्न हो गया है। जबकि शरीअत, खासकर इसके महिलाओं और संवैधानिक मामलों से संबंधित अनुभाग एक अनुकरणीय विधिक व्यवस्था रखते हैं। ये अनुभाग मानवाधिकारों की रक्षा के साथ समाजों को बांधे रखने व वैयक्तिक अधिकारों की सुरक्षा में पूरी तरह सक्षम हैं।

शरीअत के नियम मानवता की ऐसी सेवा करते हैं जैसा दूसरा कोई-सा विधान नहीं कर पाता। यह निश्चित ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि उन्हीं नियमों को इस्लाम के तहत सख्त सजा देने की कुछ मुसलमानों की प्रवृत्ति के चलते ग्रहण लग गया है। इससे इस्लाम के बारे में गलतफहमियां फैल गईं और मुसलमान किसी अन्य ग्रह के प्राणी की तरह माने जाने लगे। इस्लाम मानवीय गरिमा बचाने और उसके संरक्षण की बात ज्यादा करता है, न कि चोर के हाथ काट देने तथा बलात्कारी को संगसार कर देने यानी पत्थर मार-मारकर मौत के घाट उतार देने की। सख्त सजाओं की एक वजह अपराधियों में न्याय का भय पैदा करना भी है। इसमें एक तथ्य यह है कि सजा देने से पहले कई प्रक्रियाएं पूरी की जाती हैं। इसके लिए पुख्ता सबूत जुटाना भी दुष्कर होता है, इतना कि सजा का क्रियान्वयन व्यावहारिक रूप से असंभव हो सकता है।

थोड़े आश्चर्य की बात है कि इस्लामी समाज को वास्तव में दयालु व सौहार्दपूर्ण माना जाता है। उच्च आदर्शों वाली एक सभ्यता तैयार करने के लिए इस्लाम ने कुछ नियम तय किए हैं। इनके अनुसार एक उच्चस्तरीय सभ्य समाज का आवश्यक घटक 'मानव' निश्चित ही उच्च मानकों पर खरा उतरने वाला होना चाहिए, जैसा कि उसके रचयिता ने उसे आदर्श रूप में तैयार किया है।

दुनिया में मौजूद तरह-तरह के लुभावने आकर्षण मुसलमानों की अल्लाह के प्रति निष्ठा और लगाव पर प्रहार करते रहते हैं। ऐसे माहौल में आज के किसी भी मुस्लिम समाज से पूरी तरह इस्लाम पर चलने की आकांक्षा रखना हकीकत से दूर होना है। अपने जीवन में मैं इस तरह के चंद लोगों से ही मिल पाया हूं, जो पूरी तरह इस्लाम का पालन करते हों और यह मैं पूरे विश्वास से कह सकता हूं कि डॉ. हस्सान हतहूत उनमें से एक हैं। इसलिए उनकी पुस्तक 'मुस्लिम मानस का अध्ययन' का परिचय लिखने का आमंत्रण पाकर मुझे बहुत खुशी हुई। उनकी पुस्तक का अध्ययन करने से भी पहले उनके विचारों से परिचय ने 'वास्तविक आदर्शों' के इस विश्व की सुखद यात्रा शुरू करने में बहुत मदद की।

डॉ. हतहूत इस्लाम की आत्मा को बेहतर ढंग से समझते हैं, जैसा कि उसे

समझा जाना चाहिए। इसलिए अल्लाह और एकेश्वरवाद में उनका अडिग विश्वास ही न केवल अल्लाह के संदेश और पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) की शिक्षाओं को अंगीकार करने में सहायक है बल्कि इसे तर्कसंगत व विवेकपूर्ण ढंग से सबके सामने रखने में भी सक्षम है। कुरआन की आयतों के संदर्भ सहित ऐसे मानसिक प्रयास इंसान को सृष्टि की रचना और उसके साथ संबंधों पर विचार करने, मंथन करने को प्रेरित करते हैं। इसी से व्यक्ति को सृष्टिकर्ता की पहचान भी होती है। कुरआन के अनुसारः

निस्संदेह आकाशों और धरती रचना में और रात और दिन के आगे-पीछे बारी-बारी आने में उन बुद्धिमानों के लिए निशानियां हैं। (३-१९०)

जो खड़े, बैठे और अपने पहलुओं पर लेटे अल्लाह को याद करते हैं और आकाशों और धरती की रचना में सोच-विचार करते हैं। (वे पुकार उठते हैं) 'हमारे रब! तूने यह सब व्यर्थ नहीं बनाया है। महान है तू...' (३-१९१)

'गॉड' शीर्षक से इस पुस्तक का प्रथम अध्याय रास्ता दिखाता है, जिसके माध्यम से मुस्लिमजन अल्लाह को अच्छे से जान सकते हैं। लेखक की शैली एक तरफ युवाओं को कायल करने वाली है, वहीं परिपक्व लोगों तथा वयस्क नास्तिकों को प्रेरित करती है।

अल्लाह का अस्तित्व अकाट्य सत्य है, इसका तर्कसंगत विश्लेषण लोगों का मार्गदर्शन करता है। दूसरा अध्याय अल्लाह के अस्तित्व को और अधिक तर्कसंगत व विश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। इस अस्तित्व का मानवों पर प्रभाव, मृत्यु उपरांत पुनर्जीवन, मनुष्य तथा दानव के बीच भेद और विश्व के तीन बड़े एकेश्वरवादी धर्म यहूदी, ईसाई व इस्लाम की चर्चा की गई है, जिनका प्रारंभ एक ही कुलपिता इब्राहीम से हुआ।

पुस्तक का तीसरा अध्याय इस्लाम की रुचिकर व वस्तुनिष्ठ व्याख्या के साथ इसका दूसरे दो अन्य धर्मों के साथ संबंध भी बताता है। इस्लाम के बारे में जानकारी नहीं रखने वाले गैर मुस्लिम पाठक ईसाई मत के साथ इस्लाम के संबंधों के बारे में जानकर आश्चर्यचकित रह जाएंगे। कुरआन कहता हैः

और ईमान लाने वालों के लिए मित्रता में सबसे निकट उन लोगों को पाओगे, जिन्होंने कहा कि 'हम नसारा हैं।' यह इस कारण है कि उनमें बहुत से धर्मज्ञाता और संसार त्यागी संत पाए जाते हैं। और इस कारण कि वे अहंकार नहीं करते। (५-८२)

पाश्चात्य सभ्यता के विभिन्न अनुशासनों व कलाओं पर इस्लाम ने स्पष्ट प्रभाव छोड़े हैं। इसने पश्चिमी जगत को वह आधार दिया जिस पर उनकी सभ्यता खड़ी हो सकी। अरबी शब्दों और उनके अनुवादों का उदारता से अंगीकार इस बात को पुष्ट करता है।

उदाहरण के तौर पर 'यूनिवर्सिटी' के लिए अरबी में 'जामिआ' शब्द का उपयोग किया जाता है। यह शब्द 'जामी' से व्युत्पन्न है। जामी का अर्थ है नगर की बड़ी मस्जिद। ऐसी मस्जिद जहां विभिन्न अनुशासनों जैसे चिकित्सा, ज्योतिष

शास्त्र, विधि आदि की शिक्षा दी जाती है।

यहां विद्यार्थी शिक्षकों के आसपास एक घेरा बनाकर बैठते हैं। पश्चिम ने इसका अनुसरण किया। जिनमें शिक्षा दी जाए ऐसे भवनों के लिए आधुनिक इंग्लिश में अरबी शब्द 'जामी' की जगह लैटिन शब्द यूनिवर्सिटाज या यूनिवर्सिटी का उपयोग किया गया। इसी तरह मुस्लिम विद्यार्थियों द्वारा शिक्षा पूरी कर लेने के बाद दी जाने वाली डिग्री को 'इजाजः' कहा जाता था।

यह शब्द 'लाइसेंस' के अर्थ में भी इस्तेमाल होता है। कुछ यूरोपी देशों में अकादमिक डिग्रियों के लिए भी इस शब्द का उपयोग किया जाता है।

अब यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि मुसलमानों व ईसाइयों के बीच पहले से चला आ रहा मनमुटाव राजनीतिक है। इस्लाम का एक धर्म के रूप में उदय इसका कारण नहीं है और लेखक ने इसे स्पष्ट किया है कि आज की सबसे प्रभावशाली सभ्यता को यहूदी-ईसाई सभ्यता कहना गलत है।

यह असल में प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्यों को झुठलाने जैसा है, जो प्रारंभिक दौर के मुसलमानों पर इस सभ्यता के स्पष्ट प्रभाव को दिखाते हैं। इससे भी महत्वपूर्ण यह कि इन मुसलमानों पर यहूदियों का ज्यादा प्रभाव नजर आता है। इसलिए आज की सभ्यता को यहूदी, क्रिश्चियन, इस्लामी सभ्यता कहना ज्यादा उपयुक्त होगा।

यह अध्याय बताता है कि यहूदी जिन्हें अपना पैगंबर मानते हैं, उन मूसा (अलैहिस्सलाम) का जिक्र कुरआन में पूरे सम्मान के साथ मौजूद है। मूसा (अ.) और उनकी कौम के संघर्ष का जिक्र कुरआन में अनेक बार आया है बल्कि वास्तव में तो मूसा का जिक्र कुरआन में हमारे पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) से भी ज्यादा मिलता है।

अल्लाह की उन दोनों पर रहमत (कृपा) हो। इस्माईल, इस्हाक, याकूब, मूसा, हारून, दाऊद, सुलैमान औऱ यूसुफ जैसे पैगंबरों को मुसलमान भी पूरी तरह सम्मान देते हैं। यह तमाम संकेत हैं कि मुसलमानों व यहूदियों के बीच विवाद धार्मिक न होकर राजनीतिक है।

वास्तव में तो यहूदी पहला समुदाय होगा जो यह स्वीकारता है कि वे इस्लामी राज्यों में खुद को अधिक सुरक्षित महसूस करते हैं और वहां उनसे अच्छा व्यवहार किया जाता है। स्पैन में जब इस्लामी शासन खत्म होने लगा तो यहूदी भी उस देश को छोड़कर अन्य इस्लामी देश में चले गए, जहां उस्मान वंश का शासन था।

ठीक इसी तरह यदि इन अपेक्षित संबंधों की बाबत गंभीरता व राजनीतिक इच्छाशक्ति दिखाई जाए तो इस्लामी व ईसाई जगत में भी सहिष्णुता व सहयोग का मजबूत बंधन हो सकता है।

दोनों धर्मों के बीच मतभेद दुश्मनी का कारण न बनें। दोनों के समान हित खासे हैं इसलिए चाहिए कि मुसलमानों के साथ होता रहने वाला अन्याय समाप्त हो। यह समय है कि सदियों से चला आ रहा यह सब और दोनों के

बीच की कड़वाहट और विद्वेष को खत्म कर मित्रता का नया अध्याय शुरू किया जाए।

पुस्तक का चौथा अध्याय लंबा और काफी महत्वपूर्ण है। यह इस्लाम का सटीक विश्लेषण करता है। डॉ. हतहूत ने संक्षेप में इस्लामिक विधि यानी शरीअत के साथ धर्म से राज्य व प्रजातंत्र के संबंधों का भी जायजा लिया है। इस अध्याय में वे इस्लाम के आध्यात्मिक पहलू का भी अध्ययन करते हैं। जैसे इबादत के मामले और नैतिक संदेश जो मुसलमानों में अनुशासन के साथ करुणा, दया और हर अच्छी चीज के प्रति प्रेम पैदा करते हैं। डॉ. हतहूत द्वारा प्रस्तुत शरीअत के रोचक विश्लेषण में मुझे एक और महत्वपूर्ण सूत्र जोड़ना है। वह यह कि दो वस्तुओं के बीच एक स्पष्ट अंतर कर दिया जाना चाहिए। कुरआनी नियम और निर्देश तथा पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के कर्म और उनके कथन।

इस्लामी विधि यानी शरीअत के ये पावन और पुष्ट स्रोत हैं। दूसरी ओर विभिन्न मतावलंबी मुस्लिम न्यायविद और अध्येताओं द्वारा लंबे समय से बड़ी संख्या में नियम प्रतिपादित किए गए हैं। ये नियम मुसलमानों के लिए धार्मिक बंधन नहीं हैं और इन्हें कुरआन व हदीस की तरह पावन और पुष्ट नहीं माना जा सकता।

जनहित के सहारे इस्लामिक विधि यानी शरीअत में कई रास्ते निकाल लिए गए। इसके स्रोत को न्यायविदों ने 'मसालीह मुरसलाह' कहा। इसे हम आम भाषा में 'जनहित' कह सकते हैं। पूर्व के न्यायविदों ने इसका उपयोग ऐसी स्थितियों के लिए किया जो पैगंबर मुहम्मद (सल्ल.) के समय में मौजूद नहीं थीं। इसलिए इनका जिक्र कुरआन व हदीस में नहीं मिलता है।

न्यायविदों ने 'जनहित' देखते हुए निर्देश देने शुरू कर दिए। कुछ तो इससे भी आगे बढ़ गए और कुरआन व हदीस तथा जनहित में जहां टकराव पैदा हुआ, वहां जनहित को वरीयता दे दी। यह ऐसी स्थिति थी, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी।

बदलते समय के साथ पैदा होने वाली नई समस्याओं के साथ तालमेल बिठाने के लिए मुस्लिम समुदाय में बदलाव के साथ शरीअत के परिवर्धन की भी जरूरत थी। और यह बहुत जल्दी शुरू हो गया। हजरत मुहम्मद के स्वर्गारोहण के बाद इस्लाम के दूसरे खलीफा और निर्भीक व्यक्तित्व के स्वामी हजरत उमर इब्ने खत्ताब (रजिअल्लाहू अन्हा) दूर तक गए।

यहां तक कि उन्होंने कुरआन के कुछ प्रावधानों को स्वीकार या निरस्त करने जैसे कार्य भी किए।* यह प्रस्तावना इस विषय पर विस्तार से चर्चा करने का स्थान नहीं है, सो मैं अपनी टिप्पणी 'इज्तिहाद' (धार्मिक मामलों में नवाचार) को लेकर दो महत्वपूर्ण विचारधाराओं के अंतर स्पष्ट करने तक या इसमें न्यायिक तर्क बुद्धि के उपयोग तक सीमित रखूंगा।

इनमें से एक धारा कुरआन व हदीस पर अत्यंत श्रद्धा रखने वाली उसका अक्षरशः पालन करते हुए उसके दीगर पहलुओं को नजरअंदाज करने वाली,

जबकि दूसरी धारा शब्दों के गूढ़ रहस्यों की तह तक पहुंचने के प्रयास करते हुए उनके विधि सम्मत तर्क ढूंढने में विश्वास रखने वाली है।

डॉ. हतहूत ने सैनिकों से संबंधित वह घटना प्रस्तुत की है, जिसमें उन्हें 'बनी कुरैदा' के साम्राज्य से इतर अस्र की (दिन के तीसरे पहर वाली) नमाज नहीं पढ़ने के निर्देश दिए गए थे। जब अस्र की नमाज का वक्त उस स्थान तक पहुंचने से पहले खत्म होने को हुआ तो कुछ लोगों ने नमाज पढ़ने को वरीयता दी। उन्होंने पैगंबर (सल्ल.) के निर्देश को अक्षरशः न लेते हुए उसके अर्थ को आधार मानकर यह निर्णय लिया। उनके अनुसार पैगंबर (सल्ल.) ने उन्हें अस्र की नमाज से रोका नहीं था बल्कि इस आदेश से आशय यह था कि वे जल्दी अपनी मंजिल तक पहुंचें। इधर कुछ सैनिकों ने इस आदेश के शब्दों को महत्वपूर्ण माना और नियत स्थान तक पहुंचने से पहले अस्र की नमाज अदा नहीं की। बाद में पैगंबर (सल्ल.) ने दोनों पक्षों के अमल को दुरुस्त करार दिया क्योंकि दोनों गहरी श्रद्धा पर आधारित थे।

अपने इज्तिहाद में उमर इब्ने खत्ताब उस विचारधारा से संबंध रखते थे, जो मात्र शब्दों पर न जाकर उनके गूढ़ अर्थों पर विचार करते थे। इस्लाम के निर्देशों का विवेचन, उन्हें अंगीकार करना या नई परिस्थितियों के अनुसार उन्हें प्रस्तुत करने में डॉ. हतहूत भी उमर (रजि.) के स्कूल से ही संबंध रखते हैं।

इस्लाम और लोकतंत्र के बीच संबंधों की व्याख्या लेखक ने बहुत अच्छे ढंग से की है। कुरआन और हदीस में इस्लामी सरकार की जो अवधारणा दी गई है, उसमें कहीं भी संवैधानिक तंत्र की व्याख्या स्पष्ट रूप से नहीं की गई है। इनमें दिए आधारभूत सिद्धांतों के आधार पर कोई भी सामान्य संवैधानिक सत्ता काम कर सकती है। इसके मुताबिक शासक दूसरों के द्वारा चुना जाना चाहिए तथा वह नियमों के तहत काम करे।

समुदाय से संबंधी निर्णय बहुमत के आधार पर लिए जाएं। यही 'शूरा' की व्यवस्था का सार भी है। इस्लामी राज्य प्रमुख के तौर पर पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) ने भी शूरा की व्यवस्था के तहत काम किया। इसके लिए कोई आकाशीय अवतरण नहीं होता था। शूरा के काम करने का तरीका यह था कि तमाम मामलात में समय और स्थान के लिहाज से परिस्थितियों के तहत निर्णय लिए जाते।

इसके लिए सबसे जरूरी तत्व लचीलापन था। खलीफा उमर के दौर में शूरा की बैठक अमूमन मस्जिद में होती थी। गंभीर समस्या पर विचार-विमर्श करने की स्थिति में यह बैठक शहर से बाहर खुले में आयोजित की जाती, जहां सभी संबंधित सलाहकार उपस्थिति होते। सामूहिक रूप से निर्णय लिए जाने तक बैठक चलती। इसमें कई दिन भी लग जाते पर जो निर्णय लिए जाते, शासक उसका पाबंद होता। शूरा की व्यवस्था के तहत बहुमत की सत्ता स्थापित करने के साथ इस्लाम ने मानवाधिकारों को भी दृढ़ता से स्थापित किया। अपने आराध्य की पूजा के साथ अभिव्यक्ति व कहीं भी रहने-बसने की स्वतंत्रता, इस्लामी राज्यों के नागरिकों के लिए समानाधिकारों की स्थापना कर इनकी

रक्षा की व्यवस्था भी की।

अन्य देशों ने घुमा-फिराकर बाद में इन्हीं चीजों को अपनी व्यवस्था में शामिल किया। इस्लाम के उदय के बाद से बहुत सारे परिवर्तन आए और दुर्भाग्य से इस्लामी राज्य व्यवस्था के कई मौलिक प्रावधान बदल डाले गए। नतीजा यह हुआकि कुछ इस्लामी देशों में इस्लाम व लोकतंत्र के बीच घृणा आसानी से देखी जा सकती है।

लेखक ने इस्लाम के पांच स्तंभों को संक्षेप में स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है। अमूमन एक मुसलमान बचपन से ये पांचों चीजें सीख लेता है, लेकिन इस अध्याय से गैर मुस्लिम पाठकों को यह समझने में आसानी होगी कि कैसे एक मुसलमान अपनी रोजाना की इबादतों, अल्लाह के आदेशों का पालन व उसके द्वारा रोकी गई बातों से रुककर उस सृष्टिकर्ता से अपना संबंध मजबूत करने में लगा रहता है।

इसके साथ मुसलमान की जिंदगी के उस हिस्से का भी जिक्र है, जिसमें दूसरों के साथ उसके संबंध व व्यवहार आते हैं। यही किसी का भी ध्यान उसकी ओर खींचता है। इस्लाम ने नैतिकता के उच्च मानदंड स्थापित किए हैं, जो जीवन के हर पहलू से संबंधित हैं।

इनके माध्यम से ही मुसलमान दयालु, सहिष्णु, लज्जावान और अच्छे कर्मों के लिए प्रयत्नशील रहता है। लेखक ने इस बाबत कुरआन व हदीस से सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जो सदियों से मुसलमानों का मार्गदर्शन कर रहे हैं और इसमें सक्षम हैं कि वे गैर मुस्लिमों के सामने इस्लाम का एक सजीव चित्र प्रस्तुत कर सकें।

पांचवां व अंतिम अध्याय उन राजनीतिक, सामाजिक मुद्दों पर आधारित है, जो सारे विश्व में चर्चित व विवादित हैं। लेखक के विचार व सुझाए गए समाधान शरीअत की उनकी गहन समझ दिखाते हैं। लेखक द्वारा प्रस्तुत थ्योरीज, समाधानों से कुछ मुसलमानों के विचार अलग हो सकते हैं। इस्लाम ने ऐसे वैचारिक मतभेदों का स्वागत किया है। इस बाबत पैगंबर ने हमारे लिए यह नियम भी प्रस्तुत किया है 'जिसने सत्य या किसी समस्या के हल की खोज में चिंतन किया और सही उत्तर पा गया, उसके लिए दो नेकियां हैं। और वह जिसने चिंतन किया लेकिन सही उत्तर नहीं खोज सका, उसके लिए एक नेकी है।' मुझे लगता है कि डॉ. हतहूत ने जिस तरह कुरआन व हदीस की गहराइयों में जाकर उसके अर्थ प्रस्तुत करने के प्रयास किए हैं, उसके लिए उन्हें दो नेकियां मिलेंगी, एक नहीं।

* शेख अहमद ज़की यमनी सउदी अरब के पूर्व पेट्रोल व खनिज संसाधन मंत्री

तथा अपने समय के मंझे हुए राजनीतिज्ञ हैं। वे इस्लामिक अध्येता भी हैं। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के लॉ स्कूल में इस्लामी शरीअत पर आधारित कोर्स में वे हर साल शिरकत करते हैं। उनकी पुस्तक 'द एवरलास्टिंग शरीआ' (सऊदी पब्लिशिंग हाउस, १९७०) के साथ इस्लाम पर आधारित अनेक आलेख व व्याख्यान प्रकाशित हैं। वे लंदन (इंग्लैंड) स्थित प्रतिष्ठित सेंटर फॉर ग्लोबल एनर्जी स्टडीज के संस्थापक अध्यक्ष होने के साथ अलफुरकानः द इस्लामिक हेरिटेज फाउंडेशन के भी संस्थापक अध्यक्ष हैं। 'अलफुरकान' प्राचीन इस्लामी पांडुलिपियों के संरक्षण, दस्तावेजीकरण तथा प्रकाशन करने वाला महत्वपूर्ण संस्थान है।

खलीफा उमर के यह निर्देश मनमाने नहीं थे, बल्कि वे कुरआन व उसके आदेशों को लेकर उनकी समझ के साथ उस समय की परिस्थितियों पर आधारित थे। ऐसे मौकों पर वे पैगंबर हजरत मुहम्मद (सल्ल.) के विद्वान साथियों को जमा करके उनका परामर्श मंडल बना लेते। वे सब खलीफा से सहमत थे।

••

••

1. सुन्नतः 'नियम, पथ, तरीका, चलन या जीवनशैली।' हजरत मुहम्मद (सल्ल.) की जीवनशैली, उनके कथनों व निर्देशों के लिए प्रयुक्त शब्द, जो इस्लामी विधान यानी शरीअत को दूसरा प्रमुख स्रोत है।

••

भूमिका
xxvi

ब्रिटिश शासकों के हाथों गुलाम मिस्र में मेरा जन्म हुआ। देश की इस गुलामी ने मेरे जीवन में महत्वपूर्ण रोल अदा किया। पुरानी यादों में बसे बचपन को टटोलता हूं तो पाता हूं कि जब मैं छोटा बच्चा था, मां अक्सर कहा करती 'जब तुम मेरे पेट में थे, मैं अक्सर तुम्हें 'हस्सान' कहा करती थी। मैंने तुम्हें मिस्र को ब्रिटिशों से आजाद कराने के लिए समर्पित कर दिया है।'

यह बात जैसे मेरे साथ चिपक गई। नतीजा? न बचपन में बड़ों का दुलार मिला, न ही एक मस्तीभरी किशोरावस्था। एक महान कार्य सामने था, जीवन का एक उद्देश्य था!

देश पर ब्रिटिश कब्जे के खिलाफ अवश्यंभावी जंग में मेरी नस्ल भी अपनी पूर्ववर्ती नस्ल के पदचिन्हों पर चली। ब्रिटिश और उनकी साथी मिस्री सरकार के लिए हम आतंकवादी थे, जबकि बाकी देश और दुनिया के लिए स्वतंत्रता संग्राम सेनानी।

हम भाग्यशाली रहे कि हमने ब्रिटिश शासनकाल का अंत देखा। बाद में जब मैं अपने अध्ययन के लिए ब्रिटेन में रहा तो मेरे दिल में ब्रिटिश अवाम के लिए प्रेम व सम्मान के भाव पैदा हो गए। मुझे इस हकीकत का अहसास हुआ कि अपने राजनीतिज्ञों और सत्ताधारियों द्वारा अपनाई गई विदेश नीति से अवाम काफी भिन्न हो सकते हैं। काफी बाद में जब मैं अमेरिका रहने आया तो यहां आकर भी इसी तरह की अनुभूति हुई।

गंभीरता और समस्याएं हल करना मेरा विद्यार्थी जीवन था। ऑब्सटेट्रिक्स (प्रसूति विज्ञान) और गॉयनेकॉलॉजी (स्त्री रोग विज्ञान) जैसी उच्च चिकित्सकीय शिक्षा के चलते जीवन बहता रहा। एक पुख्ता एकेडमिक आधार के लिए मैंने स्कॉटलैंड की एडिनब्रा यूनिवर्सिटी से पीएचडी की डिग्री हासिल की। मेरे शोध का विषय 'स्टडीज इन नॉर्मल एंड एबनॉर्मल ह्यूमन एंब्रायोजेनेसिस' था।

मुझे इसकी संतुष्टि थी कि यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर व अपने विभाग का अध्यक्ष बनने, क्लिनीशियन, वैज्ञानिक और अध्यापक का काम करने के साथ अपने प्रोफेशनल क्षेत्र में न केवल क्षेत्रीय बल्कि राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उच्च स्थान पाने जैसे कई ख्वाब पूरे कर पाया।

हालांकि यह सब जैसे मेरे दो फेफड़ों में से एक का काम था, सिर्फ सांस लेना। मेरा असली प्रेम तो धर्म का अध्ययन था, न सिर्फ अपने धर्म का बल्कि दूसरे धर्मों का भी। धर्म का मेरा अध्ययन उतना गहन तो नहीं है, जितना धार्मिक शिक्षा हासिल करने वालों का होता है लेकिन विज्ञान और चिकित्सा शास्त्र के अध्ययन ने मुझे अमूल्य दृष्टि प्रदान की। दृष्टि अपने धर्म पर चिंतन करने, उसे समझने और समझाने की।

द्विभाषी होने व दो संस्कृतियों से संपर्क होने के चलते मुझे यह अहसास हुआ कि पश्चिम में इस्लाम बड़े पैमाने पर इसके लिए पहचाना जाता है जो वह है नहीं। (और कई बार मुझे लगता है कि खुद मुसलमान भी इसमें हिस्सेदारी निभाते हैं)। सतत् इस्लाम की झूठी निंदा करना, इस मजहब की छवि खराब करना तो जैसे कुछ राजनीतिक समूहों, मीडिया और मनोरंजन जगत का एक मिशन व करियर हो गया।

मेरा विश्वास है कि किसी के बारे में जानकारी होना मानव का मौलिक अधिकार है। मेरा इस पर भी विश्वास है कि शांति, भाईचारा और सद्भाव हमारी आपसी समझ व तथ्यात्मक जानकारी पर ही आधारित रहते हैं, न कि झूठ और पुरातनपंथी कथाओं पर। इस जानकारी की बदौलत लोगों को एक-दूसरे की वास्तविक समानताएं व अंतर पता चलते हैं। तब इन अंतर, मतभेदों का सम्मान करते व इनके प्रति सहिष्णुता दिखाते हुए वे समान रूप से जीने को राजी होते हैं।

यह पुस्तक इस्लाम को लेकर इसी दिशा में किया गया एक तुच्छ प्रयास है। इस्लाम जो इसी ग्रह के एक अरब लोगों की आस्था है।

मैं इसे अपना प्रेम समर्पित करता हूं।

प्रेम अल्लाह की तरफ से है। घृणा शैतान की तरफ से।

- हस्सान हतहूत